CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

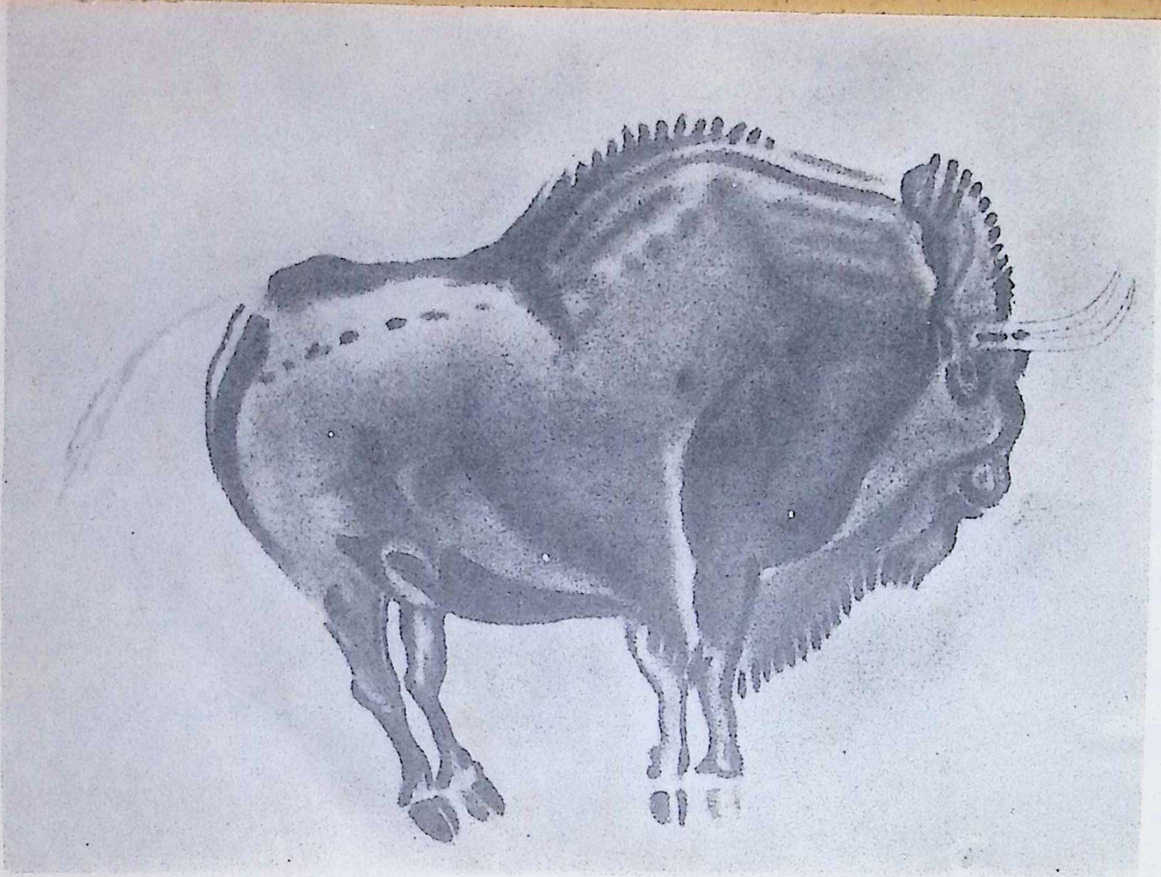

अल्तमीरा की एक गुफा की छत से प्राप्त परवर्ती पूर्वपाषाणकालीन चित्र

अमेरिकन म्यूजियम ऑफ नैचुरल हिस्ट्री के सौजन्य से]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रागैतिहासिक मानव
और
संस्कृतियाँ

लेखक

श्रीराम गोयल

असिस्टेंट प्रोफेसर

प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व तथा संस्कृति विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय

भूमिका

डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष

प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय प्रकाशन

[अमेरिकन म्यूज़ियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री के सौजन्य से]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन,
गोरखपुर

© विश्वविद्यालय प्रकाशन, १९६१

प्रथम संस्करण, जुलाई १९६१

मूल्य
~~६.५०~~ 20/-

रेखाचित्र
श्री शिवकुमार गोयल

मुद्रक
अग्रवाल प्रेस,
इलाहाबाद

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अपने
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय
के
स्नेही सहयोगियों और मित्रों
को

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

चित्र-सूची १०

मानचित्र-सूची १२

तालिका-सूची १२

दो शब्द १३

स्वर्णयुग—डॉ० गोविन्दचन्द्र पांडेय १५

१. **पृथिवी का जन्म और जीवन का विकास** १–१४

(अ) हमारी पृथिवी : सृष्टि में पृथिवी का स्थान, पृथिवी का जन्म। २

(आ) जीवन का विकास : जीवन का उद्भव, विकासवाद। ३

(इ) जीवन का इतिहास : स्तरीय चट्टानें, अजीव-युग, प्रारम्भिक जीव-युग, प्राचीन जीव-युग, मत्स्य-कल्प, कार्बन-कल्प, मध्य जीव-युग, सरीसृप-कल्प, नव-जीव-युग। ५

(ई) नर-वानर-परिवार : नर-वानरों का विकास, तृतीयक-काल, चतुर्थक-काल, प्लीस्टोसीन-युग और हिम-युगक्रम, होलोसीन-युग। १२

२. **मनुष्य का आविर्भाव और प्रकृति पर विजय** १५–२२

(अ) मनुष्य का आविर्भाव : लुप्त कड़ी की समस्या, मनुष्य का आदि पूर्वज। १५

(आ) मनुष्य की सफलता का रहस्य : मनुष्य की प्रकृति, वाक्-शक्ति, विचार-शक्ति, हाथ। १८

(इ) मानव सभ्यता के प्रमुख युग : पूर्व-पाषाणकाल, मध्य-पाषाण-काल, नव-पाषाणकाल, ताम्रकाल, कांस्यकाल, लौह-काल। १९

३. **पाषाणकाल का उषःकाल** २३–२५

(अ) पाषाण काल का प्रारम्भ : प्रारम्भिक उपकरण, इयोलिथों की समस्या। २३

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषय — पृष्ठ

(आ) उषःपाषाण कालीन मानव का जीवन । — २५

४. **प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल** — २६–३६

(अ) मानव जातियाँ : मानव विकास का आदिस्थल, अफ्रीका के के मानवसम एप, मध्य अफ्रीका के मानवसम प्राणी, एशिया के मानवसम प्राणी, यूरोप के मानवसम प्राणी, यूरोप के प्रारम्भिक-पूर्णमानव । — २६

(आ) उपकरण : प्रारम्भिक हथियार, आन्तरिक उपकरण, प्रारम्भिक-चैलियन संस्कृति, चैलियन अथवा एब्बेविलियन-संस्कृति, अचूलियन संस्कृति, फलक उपकरण, क्लेक्टोनियन संस्कृति, लेवालुआजियन संस्कृति, चॉपर उपकरण । — ३१

(इ) दैनिक जीवन । — ३६

५. **मध्य-पूर्व-पाषाणकाल** — ३७–४४

(अ) नियण्डर्थल मानव : शरीर-संरचना, नियण्डर्थलों का मानव परिवार में स्थान। — ३७

(आ) उपकरण : मूस्टेरियन उपकरण। — ३८

(इ) नियण्डर्थल-संस्कृति : नियण्डर्थल युग की तिथि, गुफाओं का प्रयोग और अग्नि पर नियन्त्रण, भोजन और शिकार, सामाजिक-जीवन, मृतक संस्कार, नियण्डर्थलों का अन्त, नियण्डर्थल संस्कृति के अवशेष—तस्मानिया । — ४०

६. **परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल** — ४५

(अ) 'पूर्ण मानव' जातियाँ : पूर्ण मानव जाति का आदि स्थल, यूरोप की पूर्ण मानव जातियाँ, क्रोमान्यों मानव, ग्रिमाल्डी मानव, क़ोंबकोपेल मानव, शासलाद मानव, एशिया और अफ्रीका की मानव जातियाँ। — ४५

(आ) उपकरण : नये उपकरण, ऑरिन्येशियन संस्कृति, सौल्युट्रियन संस्कृति, मैग्डेलेनियन संस्कृति, अतेरियन संस्कृति, केप्सियन संस्कृति। — ४८

(इ) आर्थिक और सामाजिक जीवन : आवास, वस्त्र और भोजन प्राचीनतम विशेषज्ञ, पारस्परिक सम्पर्क । — ५२

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषय — पृष्ठ

(ई) कला : आभूषण इत्यादि, स्थापत्य, प्रारम्भिक चित्रकला, मैग्डेलेनियन-चित्रकला, परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन चित्रकला का हेतु। — ५३

(उ) धार्मिक विश्वास : चित्रों का 'दर्शन' तावीज, परलोक में विश्वास। — ५८

(ऊ) ज्ञान-विज्ञान — ५९

(ए) पूर्व-पाषाणकालीन मानव की उपलब्धियाँ — ५९

७. **मध्य-पाषाणकाल** — ६१–६५

(अ) संक्रान्ति काल : भौगोलिक परिवर्तन। — ६१

(आ) मध्य-पाषाणकालीन मानव का जीवन : भोजन और शिकार, कला, लघुपाषाणोपकरण, अजीलियन संस्कृति, तार्देनुआजियन संस्कृति, अस्तूरियन संस्कृति, किचेन-मिडेन संस्कृति, मैग्लेमोजियन संस्कृति, मध्य-पाषाणकाल की तिथि। — ६२

८. **नव-पाषाणकाल** — ६६–८५

(अ) नव-पाषाणकालीन उपनिवेश और तिथिक्रम : पश्चिमी-एशिया के उपनिवेश, मिश्र के उपनिवेश, यूरोप में नव-पाषाणकाल। — ६८

(आ) कृषिकर्म : कृषिकर्म का आविर्भाव, मुख्य फसलें, कृषि-सम्बन्धी उपकरण, कृषिकर्म की समस्याएँ। — ६९

(इ) पशुपालन : पशुपालन का आरम्भ, पहले पशुपालन या कृषि ? पशुपालन के लाभ, पशुपालन का प्रभाव। — ७२

(ई) मृद्भाण्ड कला : मृद्भाण्ड कला का आविष्कार, कुम्हार की कला की जटिलता, मृद्भाण्ड कला का प्रभाव। — ७३

(उ) कातने और बुनने की कला — ७५

(ऊ) काष्ठकला और नये उपकरण : पॉलिशदार उपकरण, अन्य उपकरण। — ७६

(ए) नवीन आविष्कारों का प्रभाव : जनसंख्या में वृद्धि, स्थायी जीवन का आरम्भ, मकानों के प्रकार। — ७७

(ऐ) सामूहिक जीवन : ग्रामों की योजना, स्त्रियों एवं पुरुषों में श्रम-विभाजन, परिवारों एवं ग्रामों की आत्म निर्भरता। — ७९

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषय पृष्ठ

(ओ) कला और धर्म : भूमि की उर्वरता से सम्बन्धित धार्मिक विश्वास, मृतक संस्कार और बृहत् पाषाण, जादू-टोना। ८१

(औ) ज्ञान विज्ञान ८३

(अं) पाषाणकालीन मानव की उपलब्धियाँ। ८४

९. ताम्र-प्रस्तर-काल ८६–९८

(अ) नव-पाषाणकालीन आर्थिक व्यवस्था के दोष और ताम्रकालीन आविष्कार : नव पाषाणकालीन व्यवस्था के दोष, नए आविष्कार, ताम्र, काँस्य और नगर-क्रान्ति। ८६

(आ) ताम्रकालीन उपनिवेश : ताम्रकालीन संस्कृति का उदय स्थल, मिश्र के उपनिवेश। ८८

(इ) ताम्र का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिए प्रयोग ९०

(ई) कृषिकर्म सम्बन्धी आविष्कार ९१

(ए) यातायात सम्बन्धी आविष्कार : पशुओं का परिवहन में प्रयोग, बैलगाड़ियाँ, जल यातायात। ९३

(ऐ) मृद्भाण्ड कला ९५

(ओ) नये आविष्कारों के परिणाम : विशिष्ट वर्गों का उदय तथा आत्म-निर्भरता का अन्त, स्थायी जीवनको प्रोत्साहन, व्यक्तिगत सम्पत्ति और मुद्राएँ, सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन। ९५

१०. कांस्यकाल, नगर-क्रान्ति और सभ्यता का जन्म ९९–१०९

(अ) कांस्य का उत्पादन तथा उपकरण बनाने के लिए प्रयोग ९९

(आ) नगर-क्रान्ति : नगरों के उदय के कारण, सुमेर में नगरों का आविर्भाव। १००

(इ) केन्द्रीय शक्ति का आविर्भाव : केन्द्रीय शक्ति की आवश्यकता, सुमेर के सत्ताधारी पुजारी और मिश्र के फराओ। १०२

(ई) नागरिक जीवन : विदेशी व्यापार, सैनिक शक्ति, राजकर्मचारी, न्यायालय, विधि संहिताएँ, लिपि, अंक-विद्या, साहित्य, पंचाङ्ग, खगोल-विद्या ज्योतिष, मुद्राकला भवन-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषय	पृष्ठ
निर्माण कला, मेहराब, ईंटों का प्रयोग, ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ में सभ्य समाज, आबादी, नगरों में सफाई और जल-व्यवस्था, अभिलेख।	१०३
(उ) विभिन्न प्रदेशों की सभ्यताओं में अन्तर।	१०६
पाषाणकालीन संस्कृतियाँ (सूची)	११०
विशिष्ट-शब्द-सूची	११२
पठनीय सामग्री	११७
अनुक्रमणिका	११९

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चित्र सूची

चित्र		पृष्ठ
	स्पेन की अल्तामिरा गुफा से प्राप्त बाइसन का चित्र	मुखचित्र
१.	प्रागैतिहासिक मिश्र निवासियों की सृष्टि विषयक कल्पना	१
२.	हवा में सांस लेती मछलियां	६
३.	मध्यजीव युग का एक डिप्लोडोकस्	१०
४.	मैमथ और हीडलबर्ग मानव	११
५.	प्राचीनतम पक्षी	१४
६.	अग्नि का स्वामी	१५
७.	कुल्हाड़ी का क्रमिक विकास	२२
८.	एक मैमथ का परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन चित्र	२३
९.	उषः पाषाणकालीन उपकरण	२४
१०.	ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्	२७
११.	जावा-मानव	२८
१२.	चीनी-मानव	२९
१३.	चैलियन मुष्टिछुरे	३३
१४.	अचूलियन मुष्टिछुरा	३४
१५.	अचूलियन मुष्टिछुरा	३४
१५.	क्लेक्टोनियन फलक	३४
१६.	लेवालुआजियन फलक	३५
१७.	चॉपर उपकरण	३५
१८.	ओल्डोवान उपकरण	३६
१९.	नियण्डर्थल मानव	३७
२०.	ऑस्ट्रेलोपिथेस, नियण्डर्थल, नियण्डर्थलसम और क्रोमान्यों मानवों के कपाल	३८
२१.	मूस्टेरियन-उपकरण	३९
२२.	क्रीटास से प्राप्त एक परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन चित्र	४५
२३.	क्रोमान्यों-मानव	४६
२४.	ऑरिन्येशियन उपकरण	५०
२५.	सौल्युट्रियन उपकरण	५०

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चित्र	पृष्ठ
२६. मैग्डेलेनियन उपकरण	५१
२७. ऑरिन्येशियनयुगीन नारी-मूर्ति	५४
२८. ऑरिन्येशियनयुगीन हस्ती-चित्र	५५
२९. पूर्व-पाषाणकालीन पत्थर का प्याला	५६
३०. पूर्वी स्पेन की चित्र कला	५७
३१. मैग्डेलेनियन युग की हाथीदाँत की एक मूर्ति	६०
३२. मध्य-पाषाणकालीन चित्र कला	६१
३३. लघुपाषाणोपकरण	६४
३४. नव-पाषाणकालीन जलगृह	६६
३५. नव-पाषाणकाल के कुदाल	७१
३६. फायूम से प्राप्त अन्नागार	७१
३७. नव-पाषाणकालीन मृद्भाण्ड	७४
३८. एक प्राचीन मिश्री मृद्भाण्ड पर अंकित कर्घा	७६
३९. नव-पाषाणकालीन पॉलिशदार उपकरण	७७
४०. प्रागैतिहासिक मिश्र की रीड की क झोंपड़ी का चित्र	७९
४१. नव-पाषाणकाल का एक चित्रित मेनहिर	८३
४२. स्टोनहेञ्ज का बृहत्पाषाण	८५
४३. मिश्र का पिरेमिडयुगीन हल	८६
४४. हाथीदाँत के हत्थे वाला एक गरजियन ताम्र छुरा	८९
४५. पिरेमिड युग में कुदाल का प्रयोग	९२
४६. प्राचीन मिश्र में पशुओं को हांककर ले जाता हुआ एक कृषक	९२
४७. भार ढोता हुआ गधा	९३
४८. तेपगावरा से प्राप्त खिलौना-गाड़ी की अनुकृति	९४
४९. गरजियन युग का एक मृद्भाण्ड	९४
५०. प्राचीन मिश्र में चाक पर बर्तन बनाते हुए कुम्हार	९५
५१. खफजा से प्राप्त एक चित्र	९८
५२. प्राचीन मिश्र में ईंटों का निर्माण	९९
५३. कांस्यकालीन उपकरण	१००
५४. सुमेरियन रथ	१०४
५५. सुमेर से प्राप्त एक मेहराब	१०५
५६. पिरेमिडयुगीन मिश्र में पत्थर तराशने का एक दृश्य	१०६
५७. सिन्धु-प्रदेश से प्राप्त एक मुद्रा	१०७

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मानचित्र-सूची

मानचित्र	पृष्ठ
१. यूरोप और एशिया का अब से पचास सहस्त्र वर्ष पूव का सम्भावित भौगोलिक स्वरूप	१ के सामने
२. प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकालीन संस्कृतियों का प्रभाव क्षेत्र	३१
३. आदिमानव प्रस्तरित अवशेषों के प्राप्ति स्थल	४३ के सामने
४. सभ्यता का उदय स्थल	६८ के सामने

तालिका-सूची

तालिका	पृष्ठ
१. भूगर्भीय समय-खण्ड और विभिन्न प्राणियों के आविर्भाव के युग	१२ के सामने
२. प्राणि जगत् में मानव का स्थान	१७ के सामने
३. प्लीस्टोसीनयुगीन पाषाण संस्कृतियों और मानव जातियों का तिथिक्रम	३५ के सामने
४. ताम्र और कांस्यकालीन संस्कृतियों का तिथिक्रम	८९ के सामने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दो शब्द

भारत में प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन अभी आरम्भ ही हुआ है। इस कार्य में सबसे बड़ी बाधा भारतीय भाषाओं में इस विषय पर पुस्तकों का अभाव है। यहाँ तक कि भारतीय प्रागैतिहासिक युग पर भी अधिकांश शोध-ग्रन्थ केवल आँग्ल भाषा में ही उपलब्ध हैं। इस कठिनाई को दूर करने में कुछ सहायता देने की भावना से प्रेरित होकर मैंने इस पुस्तक को प्रस्तुत करने का साहस किया है। इसमें, जहाँ तक सम्भव हो सका है, नवीनतम गवेषणाओं से प्रकाश में आये तथ्यों को समाविष्ट कर दिया गया है।

इस पुस्तक के प्रणयन में मुझे अनेक महानुभावों से प्रेरणा एवं सहयोग मिला है। सर्वप्रथम मैं डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय का अभिनन्दन करता हूँ, जो इस पुस्तक के लिखने में ही नहीं वरन् मेरे सम्पूर्ण भाव-जगत् के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। उन्होंने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि देखने और भूमिका लिखने की कृपा की है, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग के मेरे सहयोगियों और बन्धुओं ने पुस्तक की पाण्डुलिपि देखकर समय-समय पर बहुमूल्य सुझाव एवं परामर्श दिये, इसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। श्री विजयबहादुर राव ने अनुक्रमणिका तैयार करने में सहायता दी, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। विश्वविद्यालय-प्रकाशन के अधिकारी श्री पुरुषोत्तमदास मोदी ने इसका प्रकाशन बड़ी शीघ्रता और प्रसन्नता से किया, एतदर्थ मैं उनको धन्यवाद देता हूँ।

पुस्तक में दिया गया अल्तमीरा गुफा से प्राप्त बाइसन (Bison) का चित्र अमेरिकन म्यूजियम ऑव नेचुरल हिस्टरी के सौजन्य से उपलब्ध हो सका है, इसके लिए मैं उक्त संस्था का ऋणी हूँ। रेखाचित्र और मानचित्र मेरे अनुज शिवकुमार ने एशलेमोन्टेगू की 'मेन-हिज फर्स्ट मिलियन ईयर्स', केनिथ पी० ओकले की 'मेन द टूल मेकर', एम० सी० बर्किट की 'द ओल्ड स्टोन एज', ह्वीलर की 'द अर्ली इन्डिया एण्ड पाकिस्तान', गॉर्डन चाइल्ड की 'न्यू लाइट ऑन द मोस्ट एन्श्यंट ईस्ट' तथा अन्य अनेक पाश्चात्य पुरातत्त्ववेत्ताओं के ग्रन्थों में दिये हुए चित्रों और मानचित्रों की सहायता से बनाये हैं। मैं उक्त विद्वानों के प्रति असीम आभार प्रकट करता हूँ। प्रिय शिवकुमार ने चित्र और मानचित्र बनाने में ही नहीं वरन् पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने में भी लगन के साथ कार्य किया, इसके लिए वह प्रशंसा के अधिकारी हैं।

—श्रीराम गोयल

गोरखपुर विश्वविद्यालय
२५ मार्च १९६१.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वर्णयुग

एक समय यह धारणा प्रायः प्रचलित थी कि ईश्वर ने नर, वानर आदि जातियों की समकालिक किन्तु पृथक् पृथक् विकसित रूपोंमें सृष्टि की। मनुष्य की दैहिक और मानसिक दशा आदिकाल में भी वैसी ही थी जैसी आज। इतिहास केवल मनुष्य के संगठन, कर्म और संस्कारों में भेद करता रहा है। इस दृष्टि के अनुसार मानव-स्वभाव के अपरिवर्तित रहते हुए उसकी सामाजिक परम्पराओं का परिवर्तन ही इतिहास है। अन्य अशेष प्राणि जातियों के ऊपर मनुष्य की श्रेष्ठता और प्रभुता भी इस धारणा में निर्विवाद है। ऐतरेयोपनिषद् में पुरुष को लोक-पाल कहा गया है। यह भी प्रायः माना जाता रहा है कि मनुष्य का आदिकाल एक स्वर्णयुग था, जबकि मनुष्यों और देवताओं में अन्तर कम था। इतिहास की गति ने मनुष्य को क्रमशः कलुषित कर दिया। इस दृष्टि से मानव इतिहास को नैतिक पतन और सुख के ह्रास की कथा कहा जा सकता है। अपने देश में प्रचलित चार युगों की धारणा इस प्रसंग में उदाहरणीय है। महाभारत में कहा गया है कि कृतयुग में न राज्य था न राजा, न दण्ड न दाण्डिक। धर्म से ही प्रजा में परस्पर रक्षा होती थी। कालान्तर में धर्म के क्षीण होने पर समाज के दण्डमूलक पुनः संघटन की आवश्यकता हुई। इसी प्रकार की कल्पना अन्य अनेक जातियों में उपलब्ध होती है। आधुनिक विचारकों में लॉक एवं रूसो के द्वारा 'प्राकृत स्थिति' की कल्पना भी अंशतः सदृश है।

सृष्टि और इतिहास सम्बन्धी इन प्राचीन प्रचलित धारणाओं को आज अयथार्थ मानना अनिवार्य है। यद्यपि इन कल्पनाओं में प्रकारान्तर से सत्य की छाया सर्वथा दुरालक्ष्य नहीं है, तथापि उस प्रकार का प्रतीकात्मक अर्थ इतिहास के क्षेत्र का अति-क्रमण करता है। वर्तमान ऐतिहासिक धारणा पिछली शताब्दी में आविष्कृत विकास-वाद पर आश्रित है। जीवशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य और पशुओं के बीच कोई अपूरणीय खाई नहीं है बल्कि विभिन्न जीवयोनियों में एक निश्चित विकास का क्रम देखा जा सकता है, जिसके एक ओर उथले जल के कथंचित् उद्भूत प्राणी हैं और दूसरी ओर मनुष्य। एक ही प्राण की धारा नाना पशुओं और पौधों में प्रवाहित और विकसित हुई है। काल के सुदीर्घ आयाम में जीव ने नाना शारीरिक संस्थानों के साथ विभिन्न प्राकृतिक परिस्थितियों में विभिन्न प्रयोग किये। अन्त में तृतीयक युग में वानर परिवार के परिष्कार के द्वारा मनुष्य का उद्भव हुआ। ज़बड़ों का घटना तथा मुखाकृति में परिवर्तन, अंगुलियों और विशेषतः अंगूठे में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दक्षता का उन्मेष, जिह्वा और आँखों में नये स्वर और एकाग्रता, इन नवोदित गुणों ने मनुष्य को पिछले प्राणियों से पृथक् किया। हाथों का कौशल और वाणी का प्रयोग मनुष्य की सर्वोपरि विशेषताएं हैं जिनके द्वारा वह भौतिक संस्कृति का निर्माण तथा सामाजिक परम्परा की प्रतिष्ठा कर सका। अभाग्यवश वाणी पर आश्रित मनुष्य का विशाल मानस-साम्राज्य लिपि आदि स्थिर प्रतीकों में अभिव्यक्त हुए बिना जानकारी में नहीं आता। साक्षरता ही प्रागितिहास और इतिहास के बीच विभाजक रेखा है। अतएव प्रागैतिहासिक क्षेत्र में मनुष्य का वाङ्मय और मनोमय जगत् अधिकांशतः अज्ञात रह जाता है, यद्यपि लिपि के अतिरिक्त अन्य प्रकार के कुछ प्रतीकों से उसका किंचित् आभास होता है।

प्रागैतिहासिक मनुष्य का परिचय मुख्यतः उसके हाथों की अवशिष्ट कृतियों से ही हो पाता है। इस प्रागैतिहासिक मानव को 'निर्माता मनुष्य' (Homo Faber) कहना निश्चय ही न्यायसंगत है। विभिन्न भूभागों में उपलब्ध नाना प्रकार के प्रागैतिहासिक प्रास्तरिक उपकरणों का विवरण और चित्रण आप इस पुस्तक में पायेंगे। उनके आकार से उनके उपयोग का कुछ अनुमान किया जा सकता है। किन्तु वस्तुतः प्रागैतिहासिक समाज और संस्कृति का ज्ञान पुरातत्त्व से लेशमात्र ही हो सकता है। पुरातत्त्व को इस दिशा में नृतत्त्व-विद्या की सामग्री से पूरित करना चाहिए।

नृतत्त्व-वेत्ताओं ने अविकसित भूभागों के आदिम निवासियों का सामाजिक वृत्तान्त सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ प्रस्तुत किया है। उनके विविध विवरण के आधार पर मनुष्य के प्राचीन जीवन और समाज की कल्पना नाना प्रकार से की गई है। तस्मानिया के पुराने निवासी पूर्व-पाषाणयुगीन संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते थे। अमरीका के मूल निवासी कदाचित् उत्तर-पाषाण युग की संस्कृति में चिरकाल तक रहे। भारतीय आदिम जातियाँ सभ्यता से अतिदूर होने के कारण अपने मूल रूप में सुरक्षित नहीं हैं। वस्तुतः आधुनिक समय तक अवशिष्ट आदिम समाजों में कितना अंश अविकल तथा आदिम है, इसका निर्णय बहुधा दुष्कर समझना चहिए। इतना निश्चित है कि बहुतेरी आदिम जातियों में वैज्ञानिक और ताक्षणिक ज्ञान न्यूनाधिक रूप से सदृश स्तर का होने पर भी उनके सामाजिक जीवन में बहुत वैशिष्ट्य प्रकट होता है; अर्थात् एक ही पाषाण युग में विद्यमान नाना जातियां भाषा संगठन, रीति-रिवाज और धर्म की दृष्टि से अत्यन्त विभिन्न थीं। सांस्कृतिक विकास का एक परिणाम इन विभेदों को कम करना हुआ है। प्रायः यह धारणा प्रचलित है कि आदिम समाज में जीवन सीधा-साधा, अजटिल, अग्रन्थिल था। किन्तु यह निरपवाद सत्य नहीं प्रतीत होता। रिश्तेदारी और बिरादरी को ही

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लीजिए। अनेक आदिम समाजों में इनका बहुत जटिल व्यवस्थापन देखा जाता है। धार्मिक विचारों और कर्मकाण्ड में भी अत्यन्त वैचित्र्य दृष्टिगोचर होता है। भौतिक और आर्थिक दृष्टि से उसके सरल और अविकसित होते हुए भी प्राचीन समाज में एक प्रकार की रूढ़ियां और जटिलताएँ निश्चय से थीं। इस कारण इस प्राचीन युग का पुरातत्त्वीय चित्रण जिस प्रकार के व्यापक सादृश्य की धारणा उपस्थित करता है उसे अंशतः भ्रामक समझना चाहिए।

प्राचीनकाल में धर्म के विकास पर नाना मत प्रकट किए गये हैं। धर्म की उत्पत्ति प्राकृतिक मानने पर उसका इतिहास भ्रान्ति का, अथवा दर्शन, विज्ञान और नीति के अविभक्त पूर्व रूप का इतिहास हो जाता है। यह सही है कि प्राचीन समय में धर्म में नाना बौद्धिक और व्यावहारिक तत्त्व एकत्र संगृहीत थे जिनमें से अनेक उत्तरकाल में स्वतन्त्र रूप से विकसित होकर, विज्ञान, दर्शन, सामाजिक नीति, कानून आदि के रूप में परिणत हुए हैं। किन्तु धर्म का मर्मभूत तत्त्व इन सबसे सम्बद्ध होते हुए भी विलक्षण है। धर्म अतिप्राकृतिक (Supernatural) जीवन का अनुसंधान है। प्राकृतिक जीवन निश्चित सीमाओं में बंधा है। मनुष्य अमरता का प्रार्थी है और असीम, अपरतन्त्र जीवन में ही उसे वास्तविक सुख प्राप्त हो सकता है। यह मनुष्य का स्वभावगत अनिवार्य लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति लौकिक, प्राकृतिक उपायों से संभव नहीं है। प्रकृति के आवरण के पीछे एक शाश्वत चेतन तत्त्व है जिसकी कृपा मनुष्य को वास्तविक लक्ष्य तक ले जा सकती है। यही कृपा विशेष अधिकारी महापुरुषों के निर्मल मनोदर्पण में धार्मिक स्फूर्ति का कारण बनती है। यही दिव्य प्रेरणा, इल्हाम, श्रुति अथवा सम्बोधि का मूल उद्गम है। यहीं से धर्मचक्र का प्रवर्तन होता है।

मनुष्य जीवन एक अनिवार्य द्वैत में ग्रस्त है। तम और प्रकाश के समान उसमें सत्य और मिथ्या के सम्मिश्रण से अनुभव का इन्द्रधनुष विस्तारित हुआ है। इसीलिए पारमार्थिक स्फूर्ति और प्रेरणा भी मनुष्य के इतिहास में कहीं अपने विशुद्ध रूप में उपलब्ध नहीं होती। अलौकिक ज्ञान और अनुभूति की क्षीण ज्योति प्राप्त करने पर मनुष्य बहुधा उससे लौकिक भोग सम्पादित करना चाहता है एवं धर्म की मान्यता होने पर दूसरों की श्रद्धा का दुरुपयोग धर्माधिकारियों को प्रलोभित करता है। धर्म प्रायः मिथ्याडम्बर, अन्ध विश्वास, स्वार्थ पोषण एवं प्रवंचन का सहायक बन उठता है। थोड़ी सी सच्ची लगन यदि बहुत से झूठ में लुप्त सी हो जाय तो क्या अचरज। यही कारण है कि आधुनिक काल में सत्य के प्रति वैज्ञानिक निष्ठा तथा मनुष्य के प्रति विश्वजनीन सहानुभूति के जागरण से अनेक विचारकों ने धर्म के चिरप्रचलित अधिकांश रूप को देखकर तीव्र उद्वेग का अनुभव किया

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथा उसके इतिहास को एक प्राकृतिक तथा स्वार्थ प्रधान संस्था का इतिहास माना। वस्तुतः मनुष्य के स्वगत दोषों से अपविद्ध होते हुए भी धर्म का सूत्र मूलतः तत्त्व संलग्न है। वही एक सुनहरी डोरी है जो अन्ततः मनुष्य को अपने लक्ष्य तक ले जा सकती है। फादर श्मित ने विस्तृत अन्वेषण के बाद यह प्रदर्शित किया कि प्राचीनतम काल में सभी मनुष्य सीधा-साधा पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हुए एक ईश्वर में विश्वास करते थे। पीछे आर्थिक जटिलताओं के आविर्भाव के कारण तथा विशेषतः उन्नत आखेट के युग में सम्पत्तिगत वैषम्य एवं कबीलों के और उनके नेताओं के उदय के साथ नाना और नाना स्तरीय देवताओं की कल्पना का विकास प्रोत्साहित हुआ। अल्तमिरा की गुफा में चित्रित बाइसन (Bison) इस युग का मूर्त प्रतीक है। कभी उसके जीवन्त आलेख्य के सहारे कोई पुरोहित समस्त बाइसन (Bison) जाति के वशीकरण का प्रयास करते रहे होंगे। तब से अधिकांश मनुष्य जाति किसी न किसी रूप में ऐसे ही पुरोहितों का अनुसरण करती रही है जो अपनी ज्ञानशक्ति अथवा विज्ञान शक्ति के सहारे बाह्य प्रकृति की विजय में, अधिकाधिक सफलता प्राप्त करते हैं। पर वास्तव में मनष्य को अपनी आन्तरिक प्रकृति को जीतना है। वही शाश्वत शान्ति का मार्ग है और वही धर्म का मार्ग।

प्रागितिहास इतिहास की कतिपय सहस्राब्दियों को एक सही परिप्रेक्ष्य में रख देता है। मनुष्य की सभ्यताओं के मूल में उसकी शतधा भिन्न प्रकृति है जो केवल आर्थिक एवं वैज्ञानिक विकास से आदर्श नहीं बन जाती। प्रागैतिहासिक संस्कृतियों में अनेकविध जीवनचर्याएं और उनके उपयुक्त संगठन निर्मित हुए थे। उन सब में ऐहिक सुख की मात्रा सभ्य समाजों की तुलना में हेय थी, यह कह सकना पर्याप्त साहस की अपेक्षा रखता है। सभ्यता का मूल तत्त्व प्रगतिशीलता कहा गया है, किन्तु प्रगति का निर्धारण लक्ष्य-सापेक्ष है। ऐहिक सुख को लक्ष्य मानने पर अनिवार्य कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। प्राणि-विकास में सुख का स्थान आनुषंगिक रहा है, न कि मुख्य। मनुष्य मुख्यतः सुखापेक्षी प्राणी न होकर आत्मापेक्षी है। स्वभाव क्या है, यही जिज्ञासा मनुष्य के लिए प्रगति की मुख्य प्रेरणा है। इसकी पूर्ति के लिए प्रागैतिहासिक समाज में अधिक स्थान था या ऐतिहासिक समाज में, यह मीमांस्य है।

कदाचित् रूसो का भी यह मन्तव्य नहीं था कि सभ्य समाज को फिर से आदिम अवस्था में लौट जाना चाहिए। न यह सम्भव है, न वास्तविक प्रागैतिहासिक समाज किसी प्रकार आदर्श ही माने जा सकते है। इतना अवश्य है कि प्राचीनतम समाज पुरुष प्रधान था, यन्त्र प्रधान अथवा अर्थदास नहीं। किन्तु शीघ्र ही प्रागैतिहासिक काल में भी अर्थ परायणता एवं सम्पत्ति वैषम्य के विष-बीज

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रकट हो गये थे। सभ्यता अतीतापेक्षी न होकर अनागतप्रेक्षी है। इस अनागत में यदि ऐसी प्रकृष्टतर 'अराजकता' आविर्भूत हो जिसमें दण्डनिरपेक्ष धर्म ही शासक रहे, तो प्रागितिहास में दृष्ट लुप्त गुण का पुनराधान हो जायेगा।

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी में एक अभाव की समुचित पूर्ति करती है। मुझे विश्वास है कि प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व तथा नृतत्त्वशास्त्र के विद्यार्थियों तथा सामान्य जिज्ञासुओं के लिए यह अतीव उपयोगी सिद्ध होगी।

—गोविन्दचन्द्र पाण्डेय

अध्यक्ष,
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

"I want to know what were the steps by which men passed from barbarism to civilization."

—VOLTAIRE

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

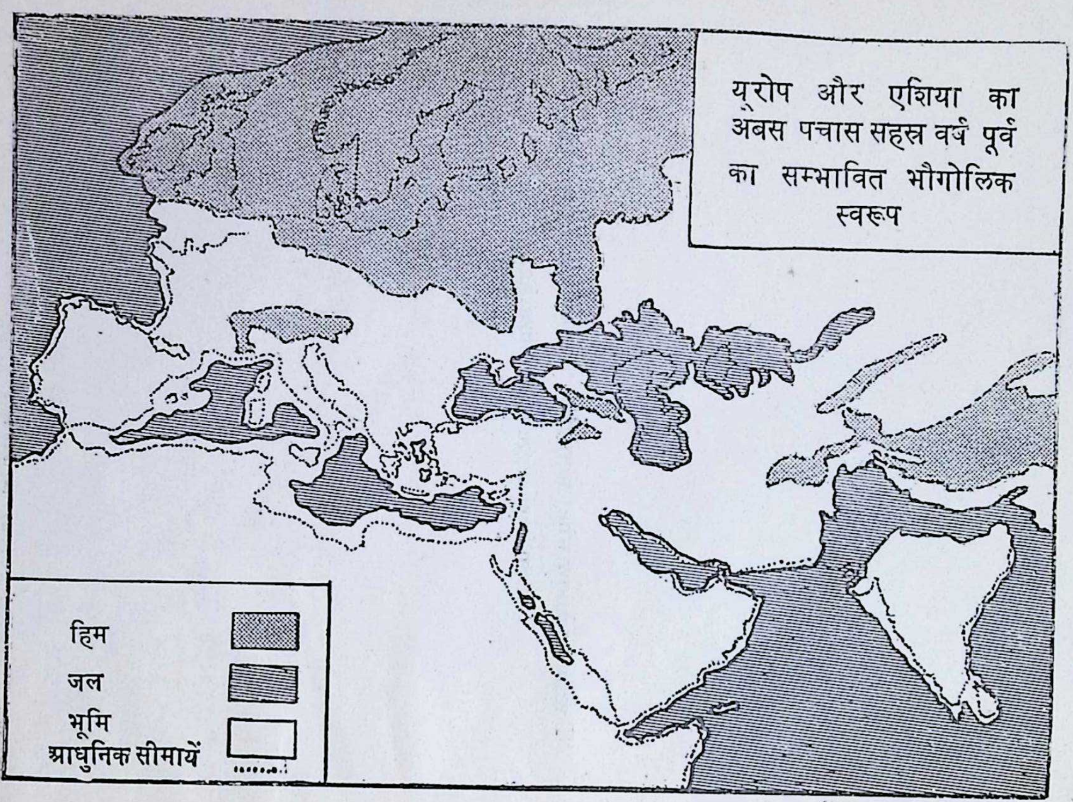

मानचित्र १

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

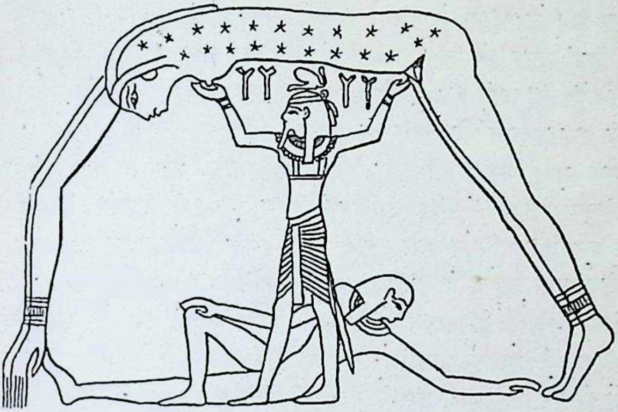

१

पृथिवी का जन्म और जीवन का विकास

"In the beginning God created the heaven and the earth. And the earth was without form, and void; and darkness was upon the face of the deep. And the Spirit of God moved upon the face of the waters."

—Genesis.

मानव-सभ्यता के जन्म और विकास का नाटक अब से कई लाख वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ। तब से लेकर अब तक इसके कुल कितने अंक खेले जा चुके हैं और उनमें कुल कितने पात्रों ने अभिनय किया है, इसकी गणना करना सहज नहीं है। इस कठिनाई का प्रधान कारण है इस नाटक का विचित्र स्वरूप। साधारण नाटकों में पात्रों से पहले रिहर्सल कराया जाता है और प्रत्येक पात्र को बता दिया जाता है कि उसकी भूमिका कैसी और कितनी लम्बी है। लेकिन इस नाटक का न तो कभी रिहर्सल होता है और न इसके पात्र अपनी भूमिका से परिचित होते

इस पृष्ठ के ऊपर दिया गया चित्र प्रागैतिहासिक मिश्र निवासियों की सृष्टि-विषयक कल्पना का उन्हीं के द्वारा अङ्कन है। इसमें सबसे नीचे पृथिवीदेव केब लेटा हुआ है। उसके पास वायुदेव शु खड़ा है। वह गगन को, जिसका अङ्कन एक देवी के रूप में हुआ है, सहारा दे रहा है। द्रष्टव्य है कि गगनदेवी का शरीर तारों से भरा हुआ है और वह झुककर पृथिवीदेव के ऊपर एक गुम्वद सा बनाये हुए है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हैं। सबसे विचित्र बात यह है कि इस नाटक के बहुत से दृश्य एक साथ चलते हैं, लेकिन कोई दृश्य शीघ्र समाप्त हो जाता है और कोई बहुत दीर्घ समय तक चलता है। उदाहरण के लिए इसका पहला दृश्य, जिसका हमें अध्ययन करना है, कई लाख वर्ष तक चलता है, लेकिन बीच के कुछ दृश्य कुछ दशकों पश्चात् समाप्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस नाटक का अन्त कब, कैसे और कहाँ होगा, इसका ज्ञान भी किसी को नहीं है। जितना नाटक खेला जा चुका है उसका ज्ञान प्राप्त करना भी बड़ा कठिन है, क्योंकि खेले जा चुके अंश के बहुत से पृष्ठ विलुप्त होगये हैं और जो पुराने पात्र अब तक रंगमंच पर अवस्थित हैं वे अपनी पुरानी भूमिका भूल चुके हैं। इसके प्राचीनतम अंश का अध्ययन करना, जो हमारा उद्देश्य है, विशेष रूप से कठिन है क्योंकि उस युग में लिपि का अस्तित्व न होने के कारण हमें पूर्णतः पुरातात्त्विक साक्ष्यों पर अवलम्बित रहना पड़ता है और पुरातात्त्विक साक्ष्य विश्वसनीय होने पर भी मानव-जीवन के कुछ अङ्गों पर ही प्रकाश डालने में समर्थ होते हैं।

हमारी पृथिवी

सृष्टि में पृथिवी का स्थान—आजकल लगभग सभी व्यक्ति यह जानते हैं कि हमारी पृथिवी नारंगी के आकार की तरह गोल है और सूर्य के चारों ओर चक्कर काटती रहती है। इसका व्यास लगभग ८,००० मील और परिधि २५,००० मील है। यह तथ्य हम आधुनिक काल में वैज्ञानिक अनुसन्धानों के द्वारा जान पाये हैं। लेकिन आदिम मनुष्य के लिए अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर यह सोचना सर्वथा सहज और स्वाभाविक था कि पृथिवी गोल न होकर चपटी है और सूर्य तथा चाँद इसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं। बैबिलोन, मिश्र और अन्य प्राचीन देशों में शताब्दियों तक खगोल-विद्या सम्बन्धी खोजें होने के बावजूद इससे मिलते-जुलते विचार मान्य रहे। भारत में आर्यभट (जन्म ४७६ ई०) ने सूर्य के स्थिर होने और पृथिवी के उसके चारों ओर घूमने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा पृथिवी की परिधि २४,८३५ मील बताई। परन्तु अभाग्यवश उनके मत को स्वयं भारत के परवर्ती विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया। यूरोप में आधुनिक काल में सर्वप्रथम कोपरनिकस् (१५ वीं शताब्दी) ने सूर्य के चारों ओर पृथिवी के घूमने के सिद्धान्त को मान्यता दी। तब से वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से पृथिवी और सृष्टि के आकार और स्वरूप के विषय में हमारे ज्ञान में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। अब हम जानते हैं कि हमारी पृथिवी एक ग्रह है और **सौर-मण्डल** की सदस्या है। सूर्य से इसकी दूरी नौ करोड़ मील से साढ़े नौ करोड़ मील तक रहती है। सौर-परिवार के अन्य ग्रह तो सूर्य से सैकड़ों करोड़ मील दूर पड़ते हैं। हमारा सौर-मंडल आकाशगंगा के असंख्य सौर-मण्डलों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में से एक है और स्वयं आकाशगंगा सृष्टि की अगणित आकाशगंगाओं में से एक है। इस सृष्टि में ऐसे बहुत से नक्षत्र हैं जिनका प्रकाश, जो एक सेकेंड में एक लाख छियासी हज़ार मील की गति से चलता है, हमारी पृथिवी तक अरबों वर्षों में भी नहीं पहुँच पाता। ऐसी सृष्टि में, जिसकी विशालता की कल्पना करना भी असम्भव है, हमारी पृथिवी महासमुद्र में एक बूँद के बराबर है।

पृथिवी का जन्म—पृथिवी की आयु के विषय में प्राचीन मनुष्य की धारणायें बहुत भ्रमपूर्ण थीं। इस क्षेत्र में भी सम्भवतः भारतीय विचारकों के अतिरिक्त किसी अन्य देश के विद्वान् सत्य के निकट नहीं पहुँच पाये। यूरोप में तो अट्ठारहवीं शताब्दी ई० तक यह विश्वास प्राप्त होता है कि सृष्टि की रचना ईश्वर ने ४००४ ई० पू० में, अब से लगभग छः सहस्र वर्ष पूर्व, की थी। पहले उसने पृथिवी और आकाश बनाए और फिर वनस्पति, जीव-जन्तु और मनुष्य। इस कार्य में उसे कुल छः दिन लगे। यह भ्रामक विचार यहूदियों की बाइबिल पर आधारित था। मुसलमानों की धर्म-पुस्तक कुरान में भी इसी मत का प्रतिपादन किया गया है। इसी से मिलता-जुलता विवरण पारसियों के धर्मग्रन्थ 'अवेस्ता' में मिलता है। लेकिन आधुनिक काल में खगोल-विद्या और भूगर्भ-विद्या, विशेषतः लुप्त-जन्तुशास्त्र और लुप्त-वनस्पतिशास्त्र की सहायता से यह सिद्ध कर दिया गया है कि पृथिवी तथा अन्य ग्रह मूलतः सूर्य के अंश थे। लगभग **साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व** जब पृथिवी तथा अन्य ग्रहों का अस्तित्व न था, सूर्य का आकार अब से विशालतर था। उस विशालतर सूर्य में एक दिन सहसा भीषण विस्फोट हुआ। इसका कारण था किसी अन्य विशाल नक्षत्र का अचानक सूर्य के अत्यन्त निकट आ जाना। उसके आकर्षण से सूर्य में गैस की विशाल तरंगें उठीं। उनमें से एक तरंग प्रचण्ड आकर्षण के वेग के कारण सूर्य से पृथक हो गई और बूंदों के रूप में बिखर गयी। इन विशृंखलित बूंदों से पृथिवी, शुक्र, बुध, मंगल शनि तथा बृहस्पति इत्यादि ग्रह बने जो सूर्य के आकर्षण के कारण उसके चारों ओर चक्कर लगाने लगे। इस प्रकार हमारी पृथिवी अब से साढ़े-चार अरब वर्ष पूर्व स्वतन्त्र रूप से अस्तित्व में आई।

जीवन का विकास

जीवन का उद्भव—पृथिवी पर जीवन का उद्भव कैसे और कब हुआ यह कहना कठिन है। प्राचीनकाल में यह विश्वास किया जाता था कि परमात्मा ने सब प्रकार की वनस्पतियाँ और जीव एक बार ही उत्पन्न कर दिये थे और फिर वंशानुवंश उनकी परम्परा चलती रही। परन्तु आधुनिक काल में अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि पृथिवी पर रासायनिक तथा भौतिक प्रक्रियाओं के फल-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वरूप भौतिक तत्त्व से **जीवतत्त्व** स्वयं ही अस्तित्व में आ गया था। जीव के प्रत्येक रूप का आधार 'प्रोटोप्लाज़्म' नाम का एक तत्त्व है जो अत्यन्त जटिल दैहिक-रासायनिक संगठन है। इस तत्त्व की संरचना का विश्लेषण अभी तक नहीं हो पाया है, इसलिए जीवन का उद्भव अभी तक एक रहस्य बना हुआ है। सम्भवत: जीवन का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव छिछले जल में धूप से प्रकाशित स्थलों पर एक स्वयं पूर्ण जीवकोष (Cell) वाले प्राणी—**प्रोटोजोआ**—के रूप में हुआ। यह प्राणी बहुत ही सूक्ष्म—अस्थि, खाल और खोल रहित—लसलसी झिल्ली के समान रहा होगा। कालान्तर में बाह्य परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर उसकी शरीर-संरचना भी सरल से जटिल होती चली गई जिससे एक जीवकोषी से बहुजीव-कोषी प्राणी—**मेटाजोआ**—अस्तित्व में आये। जीवों के विकास के इस सिद्धान्त को प्राणीशास्त्र में 'विकासवाद' कहते हैं। इसके प्रतिपादकों में फ्रांस के लेमार्क और इंगलैण्ड के **डार्विन** (१८०९-१८८२ ई०) तथा एल्फ्रेड वालेस (१८२३-१९१३ ई०) नामक विद्वान् उल्लेखनीय हैं।

विकासवाद—विकासवाद के अनुसार प्रत्येक प्राणी की सन्तान अपने माता-पिता के अनुरूप होती है; किन्तु यह अनुवंशीयता होने के बावजूद वह कुछ बातों में माता-पिता से भिन्न भी होती है। उसके शारीरिक अवयव और स्वभाव उसके माता-पिता से पूर्णतः नहीं मिलते। दूसरी ओर प्रत्येक प्राणी को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अपने को प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाना पड़ता है। डार्विन के अनुसार प्रत्येक नस्ल के प्राणियों में नवागन्तुकों की संख्या उससे कहीं अधिक होती है जितनी की उदरपूर्ति प्रकृति कर सकती है। इसके परिणाम स्वरूप प्राणियों में आत्मरक्षा के लिए संघर्ष होता है। इसे विकासवाद में 'जीवन-संघर्ष नियम' (Struggle for Existence) कहते हैं। इस संघर्ष के कारण शरीर के जो अवयव नई प्राकृतिक परिस्थितियों में सहायक होते हैं, वे विकसित होने लगते हैं और जो अवयव व्यर्थ होते हैं वे लुप्त होने लगते हैं। ऐसे किसी निरन्तर परिवर्तन के कारण ही प्राणियों का जाति-परिवर्तन हो जाता है। दूसरे शब्दों में प्रकृति में वही प्राणी जीवित रहते हैं जो स्वयं को प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल बना लेते हैं और शेष नष्ट हो जाते हैं। इस नियम को **'प्राकृतिक निर्वाचन'** (Natural Selection) या **'योग्यतम का अनुजीवन'** (Survival of the Fittest) कहते हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसे कीड़े को लीजिए जो सूखी काली जगह में रहता है। उसकी सन्तानों में अधिकांश कीड़े काले या लाल और दो-चार हरे हैं। अब अगर परिस्थितियाँ बदल जाएँ और वह स्थान हरा-भरा हो जाए तो हरे रंग के कीड़ों को अन्य रंगों के कीड़ों से अधिक सुविधा होगी, क्योंकि वे हरे पत्तों में छिपकर शत्रुओं से अपनी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रक्षा कर लेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि कुछ ही समय में हरे रंग के कीड़ों की संख्या बढ़ जायेगी और अन्य रंग के कीड़ों की संख्या घट जायेगी। इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि यह अनिवार्य नहीं है कि विकास अविच्छिन्न प्रवाह की भाँति चले और उसकी प्रत्येक कड़ी दूसरी कड़ी से जुड़ी हुई मिले। ऐसी स्थितियाँ भी सम्भव हैं जिनमें जीव एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक छलाँग मारकर पहुँच जाता है। दूसरे, यह भी अनिवार्य नहीं है कि किसी जाति का उच्चतर रूप आने पर निम्नतर रूप सर्वथा विलुप्त हो जाये। बहुधा निम्नतर प्राणियों की स्थिति भी बनी रहती है; अन्तर केवल यह होता है कि उनकी गति-विधि का क्षेत्र सीमित हो जाता है।

डार्विन ने विकासवाद की परिकल्पना को केवल पशुओं पर ही नहीं मनुष्यों पर भी लागू किया। उसके पश्चात् इस सिद्धान्त में बहुत से विद्वानों ने संशोधन प्रस्तुत किये। उदाहरणार्थ डार्विन के इस विचार का कि प्राणी को अपने माता-पिता द्वारा विकसित सब नये अवयव मिल जाते हैं, जर्मन विद्वान् ऑगस्ट वीज़मान (August Weismann) ने विरोध किया। उसने बताया कि प्राणियों में दो प्रकार के कोष होते हैं—दैहिक (Somatic) तथा आनुवंशिक (Genetic)। दैहिक कोषों में होने वाले परिवर्तनों का आनुवंशिक कोषों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए किसी प्राणी के शरीर में उसके माता-पिता के वही गुण आ सकते हैं जो उनके जनन-द्रव्य (Germplasm) में रहे हों। इसी प्रकार १९०१ ई० में डच विद्वान् ह्यू गो द व्रीज (Hugo De Vries) ने आस्ट्रियन पादरी ग्रीगोर मेन्डल (१८२२-८४ ई०) के 'अनुवंशीयता-सिद्धान्त' के आधार पर नवोत्पत्ति के कारणों के विषय में अपनी परिकल्पना (Mutation Hypothesis) प्रकाशित की। व्रीज का विचार है कि प्राणियों में विकास का कारण शनैः शनैः होने वाले परिवर्तन नहीं, वरन् यकायक होने वाले तात्त्विक परिवर्तन (Mutations) होते हैं जिनसे थोड़े समय में ही प्राणियों की ज़ाति में परिवर्तन हो सकता है। व्रीज के सिद्धान्त में हाल ही में, Goldschmidt (१९४०) तथा सिम्पसन (१९४४) इत्यादि विद्वानों ने संशोधन किये हैं।

जीवन का इतिहास

स्तरीय-चट्टानें—जीवन का प्रादुर्भाव कब हुआ, यह ठीक-ठीक कहना असम्भव है। इतना निश्चित है कि पृथिवी के अस्तित्व में आने के कम-से-कम दो अरब वर्ष बाद तक इस पर जीवन की स्थिति सम्भव नहीं थी। अपने जन्म के समय पृथिवी गैसीय अग्नि का एक भयंकर गोला थी। लेकिन धीरे-धीरे यह ठण्डी हुई और इसका ऊपरी स्तर पहले तरल और फिर ठोस अवस्था में आया और अन्त

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में चट्टानों के रूप में परिवर्तित होगया। उस समय तक जल पृथिवी पर केवल वाष्प रूप में रहा होगा लेकिन कालान्तर में यह भी ठण्डा होकर बरसने लगा। इस जल से पृथिवी के गड्ढ़े भीलों, समुद्रों और महासमुद्रों में परिवर्तित हो गये। वर्षा और हवा का एक प्रभाव और भी पड़ा। इनके सतत 'आक्रमणों' के कारण चट्टानों का बहुत सा अंश टूटकर मिट्टी के रूप में पृथिवी पर फैल गया। इन प्रक्रियाओं में लगभग दो अरब वर्ष लगे लेकिन अन्त में, अब से लगभग ढाई अरब वर्ष पूर्व, पृथिवी की अवस्था ऐसी हो गई कि यहाँ जीवित प्राणी रह सकें। इस दीर्घ काल को, जो सूर्य से पृथिवी के ठण्डी होकर ग्रह के रूप में परिवर्तित होने और समुद्रों का निर्माण होने तक व्यतीत हुआ, भूगर्भवेत्ता **'सृष्टि-समय'** (Cosmic Time) कहते हैं। इस काल का अध्ययन करने के लिए कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन इसके बाद के युग का, जिसे **'भूगर्भशास्त्रीय समय'** (Geologic Time) कहा जाता है, अध्ययन स्तरीय-चट्टानों की सहायता से किया जा सकता है (तालिका १)।

स्तरीय-चट्टानें (Sedimentary Rocks) भूगर्भीय इतिहास के वे पृष्ठ हैं जिनकी सहायता से हम जीवन के विकास का अध्ययन करते हैं। ये सरिता, वायु तथा हिमनदी (Glacier) जैसे संवाहन के साधनों के द्वारा लाये हुए चूर्णों के पर्तों से बनती हैं। ऋतु-अपक्षय (Weathering) तथा आवरण-क्षय (Erosion) द्वारा पूर्ववर्ती चट्टानों के क्षय होने पर चूर्ण (Sediments) बनते हैं। ये चूर्ण उपर्युक्त साधनों द्वारा लाये जाकर एक स्थान पर एकत्र होते रहते हैं। धीरे-धीरे चूर्ण के ढीले कणों के बीच सिलिका (Silica), मृत्तिका (Clay), कार्बोनिट, लोहा तथा नमक जैसे पदार्थ पानी से छन-छनकर जमा हो जाते हैं। इस तरह वेल्डिग (Welding) और सीमेन्टेशन (Cementation) होने पर ये चूर्ण की पर्तें ठोस चट्टानों का रूप धारण कर लेती हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि ये पर्तों अथवा तहों के रूप में निर्मित होती हैं। जब स्थिर जल में ढीले या बिखरे पदार्थ बहाकर लाये जाते हैं तो सबसे पहले बड़े कणों और उनके बाद बारीक कणों की तहें जमती हैं। इस प्रकार बड़े कणों वाली पर्तें नीचे और छोटे कणों वाली पर्तें ऊपर रहतीं हैं। इस प्रक्रिया के बराबर चलते रहने पर तह के ऊपर तह जमती चली जाती हैं। इन्हीं चट्टानों को **स्तरीय-चट्टानें** कहते हैं। इन चट्टानों की तहों—स्तरों—में उस काल के प्राणियों और वनस्पतियों के अनेक अवशेष जैसे अस्थियाँ, पत्ते, टहनियाँ, वर्षा की बूंदों के चिह्न तथा पद-चिह्न तथा उपकरण इत्यादि दब जाते हैं जिस काल में उन स्तरों का निर्माण होता है। ऐसे प्राचीन चिह्न और वस्तुएँ बहुधा पथराई—प्रस्तरित—अवस्था में मिलती हैं। अँग्रेजी में इन्हें फॉसिल (Fossil) कहा जाता है। इन अवशेषों अथवा चट्टानों का

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अध्ययन करके और वैज्ञानिक विधियों द्वारा इनका काल निर्णय करके जीवन के विकास और प्रारम्भिक मानव-सभ्यता के इतिहास का पुनर्निर्माण किया जाता है।[1]

स्तरीय चट्टानें कई प्रकार की होती हैं। उदाहरणार्थ बालू से बनी चट्टानें बलुहा-पत्थर (Sandstone) की चट्टानें कहलाती हैं। विभिन्न आकार के कंकड़-पत्थरों (Pebbles) से युक्त पथरीली मिट्टी अथवा बजरी (Gravel) के बीच में चिकनी मिट्टी आने से जो चट्टानें बनती हैं उन्हें काँग्लोमेरेट (Conglomerate) कहते हैं। काँग्लोमेरेट के टुकड़े अधिकतर गोल अथवा अण्डाकार होते हैं, जिससे प्रकट होता है कि ये नदी द्वारा दूर तक बहाकर लाये गए हैं।

वैज्ञानिकों ने स्तरीय चट्टानों से प्राप्त अवशेषों का अध्ययन करके जीवन के विकास के इतिहास को **पाँच अध्यायों** में विभाजित किया है (तालिका १)।

---

१. चट्टानों और प्रागैतिहासिक अवशेषों के काल-निर्णय के लिए विशेषतः चार प्रकार की विधियाँ अपनाई जाती हैं—

(१) पहली विधि है चट्टानों की मोटाई की जाँच करना और प्रतिवर्ष जितनी मिट्टी जमती है, उसके हिसाब से चट्टान की आयु को निर्धारित करना। लेकिन इसमें बहुत सी गलतियाँ हो सकती हैं क्योंकि सभी स्थानों पर एक वर्ष में समान मोटाई की तहें नहीं जमतीं। दूसरे, भूकम्प आदि प्राकृतिक दुर्घटनाओं से चट्टानों की तहें ऊपर-नीचे भी हो जाती हैं।

(२) बहुत से विद्वानों ने हिमयुगों की अवधि की गणना करके तत्कालीन स्तरीय चट्टानों की तिथि मालूम करने की चेष्टा की हैं। हिमयुगों के आने का कारण सौयिक विकिरण (Solar Radiation) में अन्तर पड़ जाना और सौयिक विकिरण में अन्तर पड़ने का कारण सम्भवतः ग्रहों की पारस्परिक आकर्षण शक्ति में व्यवधान पड़ जाने से पृथिवी की कक्षा (Orbit) में उलटफेर हो जाना था। इसलिये, आस्ट्रोनोमिक्ल-विधि से पृथिवी की कक्षा में होने वाले उलट-फेरों (Perturbations) का अध्ययन करके हिमयुगों की और हिमयुगों के द्वारा तत्कालीन समय में बनी चट्टानों और उनमें प्राप्त होने वाले अवशेषों की तिथि निश्चित की जा सकती है।

(३) तीसरी विधि 'फ्लोरीन परीक्षण कहलाती है। प्रत्येक जीव की हड्डी ज्यों-ज्यों पथराकर फॉसिल बनती जाती है त्यों-त्यों वह 'फ्लोरीन' नामक गैस अपने अन्दर जज़्ब करती जाती है। जितनी अधिक पुरानी हड्डी होगी उसमें फ्लोरीन की मात्रा उतनी ही अधिक होगी।

(४) चौथी विधि 'कार्बन परीक्षण' कहलाती है। प्रत्येक प्राणी में जीवितावस्था में कार्बन १४ नामक पदार्थ होता है। मृत्यु के उपरान्त कार्बन १४ धीरे-धीरे ध्वस्त होने लगता है परन्तु इसके विध्वंस की गति बहुत धीमी होती है। लगभग ५७०० वर्ष में इसकी आधी मात्रा और ११,४०० वर्ष में एक चौथाई मात्रा शेष रहती है। इसलिये प्राचीन प्रस्तरित अवशेषों में कार्बन १४ की मात्रा जानकर उनकी आयु निर्धारित की जा सकती है। इस विधि से ५०,००० वर्ष पुराने अवशेषों तक की आयु निश्चित करने में सफलता प्राप्त हुई है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(१) **अजीव-युग** (Azoic Age)—स्तरीय-चट्टानों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इनके प्राचीनतम स्तर २७० करोड़ वर्ष पुराने हैं। इनमें अब से १६० करोड़ वर्ष पुराने स्तरों तक में जीवित प्राणियों के अवशेष प्राप्त नहीं होते। अतः इन चट्टानों के युग को अजीव युग कहा जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि अजीव युग में बहुत ही सूक्ष्म प्राणी, जिनका अस्तित्व सिद्ध करना असम्भव है, अस्तित्व में आ चुके थे। इसलिए वे इस युग को प्रजीव युग (Archaeozoic Age) कहते हैं।

(२) **प्रारम्भिक-जीवयुग** (Proterozoic Age)—इस युग में पृथिवी पर जीवन का निश्चित रूप से प्रादुर्भाव हुआ। यह युग १२० करोड़ वर्ष पूर्व से ५५ करोड़ वर्ष पूर्व तक चला। इस युग के प्राणी बहुत सूक्ष्म लसलसी झिल्ली—**जेली-फिश**—के रूप में थे। इनके न हड्डी होती थी न खाल और न खोल। इनके अवशेष स्तरीय-चट्टानों में प्राप्त नहीं होते लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से इनके अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है। आज भी संसार में ऐसे बहुत से सूक्ष्म प्राणी हैं जिनके अस्तित्व का कोई भी प्रत्यक्ष प्रमाण भावी भूगर्भवेत्ताओं को नहीं मिलेगा। इन प्रारम्भिक प्राणियों का प्रादुर्भाव सम्भवतः छिछले जल में हुआ। इसी प्रकार वनस्पति जगत् का प्रारम्भ भी इस युग में **काई** की तरह के पौधों के रूप में हुआ। क्योंकि ये प्रारम्भिक जलचर प्राणी और पौधे आधुनिक प्राणियों और वनस्पति जगत् के पूर्वज थे, इसलिए आज भी समस्त जीव और वनस्पति किसी-न-किसी रूप में, कम या अधिक, जल पर निर्भर रहते हैं।

(३) **प्राचीन-जीवयुग** (Palaeozoic Age)—यह युग अब से लगभग ५५ करोड़ वर्ष पूर्व से २० करोड़ वर्ष पूर्व तक चला। इसे **प्राथमिक-युग** (Primary Period) भी कहते हैं। इस युग के प्रारम्भ में ऐसे प्राणी अस्तित्व में आने लगते हैं जिनके शरीर पर सूर्य की प्रखर किरणों से बचाव के लिए एक खोल चढ़ा होता था। ऐसे खोल-युक्त प्राणियों में छोटी-छोटी मछलियाँ, रेंगने वाले कीड़े, जल-बिच्छू और केंकड़े इत्यादि उल्लेखनीय हैं। **जल-बिच्छू**, जो ६ फीट तक लम्बा होता था प्राचीन-जीवयुग के प्रारम्भ में पृथिवी का सर्वोच्च प्राणी था। लेकिन कुछ समय बाद परिस्थिति बदल जाती है और पथिवी पर मछलियों की संख्या बढ़ जाती है (चित्र २)। इनके आँख और दाँत इत्यादि अवयव भलीभाँति विकसित हो चुके थे और रीढ़ की हड्डी बन चुकी थी। इन मछलियों को संसार का रीढ़ की हड्डी वाला—**पृष्ठवंशीय** (Vertebrate)—प्राचीनतम प्राणी कहा जा सकता है। ये मछलियाँ साधारणतः २ फुट और कभी-कभी २० फुट तक लम्बी होती थीं। इनकी संख्या इतनी अधिक थी कि प्राचीन-जीवयुग के इस भाग

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

को **'मत्स्य कल्प'** (Age of Fishes) कहा जाता है। मत्स्यकल्प में जीवन जल तक सीमित था। भूमि अभी तक अजीव युग में रह रही थी। मत्स्यकल्प के अन्त में पृथिवी की जलवायु में भारी परिवर्तन हुए, जिससे भूमि भी प्राणियों के रहने योग्य हो गई। सर्वप्रथम वनस्पति जगत् जल से निकल कर दलदल भूमि की ओर फैला। उसके साथ अनेक प्रकार के कीड़े जैसे जल-बिच्छू, कनखजूरे, केंकड़े और

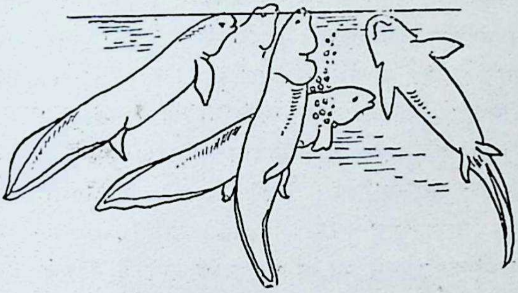

चित्र २ : हवा में सांस लेती मछलियाँ

मेढक, रेंगने वाले जीव अथवा सरीसृप (Reptiles) और विशालकाय मक्खी (Dragon-fly) इत्यादि भी दलदलों में आकर रहने लगे। स्मरणीय है कि भूमि की ओर बढ़ने वाले ये प्राणी अभी तक अर्द्ध-जलचर-अर्द्ध-थलचर अर्थात् उभयचर (Amphibia) थे। उन्होंने हवा में साँस लेना सीख लिया था लेकिन मूलतः जलचर होने के कारण उनमें अभी तक यह क्षमता नहीं आ पायी थी कि जल से वहुत दूर रह सकें। आजकल के मेढ़कों की तरह उन्हें अण्डे देने के लिए जल में जाना पड़ता था और उनके बच्चे अपना प्रारम्भिक जीवन जल ही में व्यतीत करते थे। इसी प्रकार इस काल की वनस्पति को भी अपनी जड़ें जल ही में फैलानी पड़ती थीं। इतना होने पर भी इस युग में पृथिवी पर वनस्पति का अत्यधिक वाहुल्य रहा। अधिकाँशतः उसी के अवशेष कोयले के रूप में आजकल खानों से खोदकर निकाले जाते हैं। इसलिए प्राचीन-जीवयुग के अन्तिम भाग को **'कार्बन कल्प'** कहा जाता है।

(४) **मध्य-जीवयुग** (Mesozoic Age)—यह युग आज से लगभग २० करोड़ वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ और ६ करोड़ वर्ष पूर्व तक चला। इसे **द्वितीयक-युग** (Secondary Period) भी कहते हैं। इस युग के प्रारम्भ में पृथिवी के जलवायु में अनेक परिवर्तन हुए जिनके कारण प्राचीन जीवयुग के वनस्पति और जीव-जगत् का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो गया। लेकिन परिवर्तन और कठिनाई के युग

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में ही प्राणियों में नये प्रकार की क्षमताओं का विकास होता है। इसलिए जब जलवायु पुनः साधारण अवस्था में आती है तो हम पृथिवी पर सर्वथा नये प्रकार के पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं को निवास करते देखते हैं। ये पेड़-पौधे बीज देते थे जिनसे इनकी झीलों और दलदलों से दूर थोड़ी नमी मिलने पर ही वंशोन्नति हो सकती थी। इसी प्रकार नये जीवों को भी अपने अण्डे देने के लिए जल के समीप जाने की आवश्यकता न रही। अब उनके अण्डों में जीव का गर्भ में रहते हुए ही इतना विकास हो जाता था कि वे जन्म लेते ही सीधे हवा में सांस ले सकें। यह प्राणी **सरीसृप** (Reptile) जाति के थे, जैसे बड़े-बड़े सर्प, अजगर, मगर-मच्छ, कछुए इत्यादि। ये सभी सरीसृप आजकल भी दिखाई देते हैं लेकिन उस काल में सरीसृपों का पृथिवी पर न केवल बाहुल्य था वरन् आकार भी बहुत बड़ा होता था। उनमें कुछ, जैसे दीनोसॉर्स (Denosaurs), गाइगेन्तोसॉरस (Gigantosaurus), प्लेज़िओसॉर्स (Plesiosaurs), टाइरनोसॉरस (Tyrannosaurus) और डिप्लोडोकस् (Diplodocus) इत्यादि ७०-८० फुट से १०० फुट तक और कभी-कभी इससे भी अधिक लम्बे होते थे (चित्र ३)। इसलिए मध्य-जीवयुग को **सरीसृप कल्प** (Age of Reptiles) भी कहा जाता है।

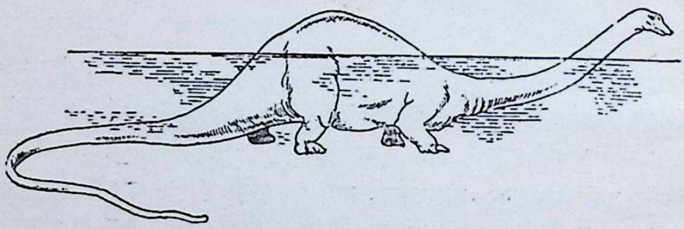

चित्र ३ : मध्यजीव युग का एक डिप्लोडोकस्

नव-जीवयुग (Cainozoic Age)—यह युग अब से छः करोड़ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और अब तक चल रहा है। इस युग के प्रारम्भ में पृथिवी पर भारी शीत पड़ा जिससे सरीसृप, जो इसे सहन नहीं कर सकते थे, नष्ट हो गये। ऐसे समय में प्राणियों में खूब जीवन-संघर्ष चला होगा और उन्हें स्वयं को प्रकृति के अनुकूल बनाने के लिए कठोर साधना करनी पड़ी होगी। इस समय पृथिवी की प्राकृतिक दशा में भी परिवर्तन हुए। हिमालय पर्वत, आल्प्स्, रोकीज तथा ऐंडीज पर्वत अस्तित्व में आये और महाद्वीपों और महासागरों को उससे मिलता-जुलता स्वरूप मिला जिसमें वे आजकल मिलते हैं।

जलवायु में सुधार होने पर हम वनस्पति को दलदलों से आगे बढ़कर सूखी भूमि पर फैलते देखते हैं। समस्त पृथिवी घास के मैदानों और जंगलों से परिपूर्ण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हो जाती है। इसके साथ ही नये प्रकार के जीव भी दिखाई देते हैं जिनमें **पक्षी** और स्तनपायी प्राणी (Mammals) प्रमुख हैं। इन जीवों की पहली झलक हमें मध्य-जीवयुग में ही मिलने लगती है। जिस समय पृथिवी पर सरीसृपों का बाहुल्य था, बहुत से प्राणियों को जीवन-संघर्ष में सफलता नहीं मिली। अतः वे ठण्डे प्रदेशों में, जहाँ संघर्ष कम था, जाकर बस गये। वहाँ के शीत से उन्हें बचाने के लिए प्रकृति ने धीरे-धीरे उन के शरीर को पंखों से ढकना आरम्भ कर दिया। ये पंख, बाद में, उड़ने वाले पर बने। इन प्राणियों को, जो कालान्तर में पक्षी कहलाये (चित्र ५, पृ० १४) अपने अण्डों को सेना होता था। कुछ अन्य प्राणियों के शरीर को शीत से बचाने के लिए प्रकृति ने बालों से ढक दिया। वे अपने अण्डों को सेने के स्थान पर बच्चा निकलने तक गर्भ में ही रखने लगे; अर्थात् बच्चे का गर्भ में पूर्णरूपेण विकास होने लगा। ऐसे बच्चों को जन्म लेने के बाद महीनों तक निर्वाह के लिए माता पर निर्भर रहना पड़ता था। इसके लिए मादा के शरीर में स्तन निकलने लगे। ये प्राणी **स्तनपायी** (Mammals) या दूध पिलाने वाले कहलाते हैं।

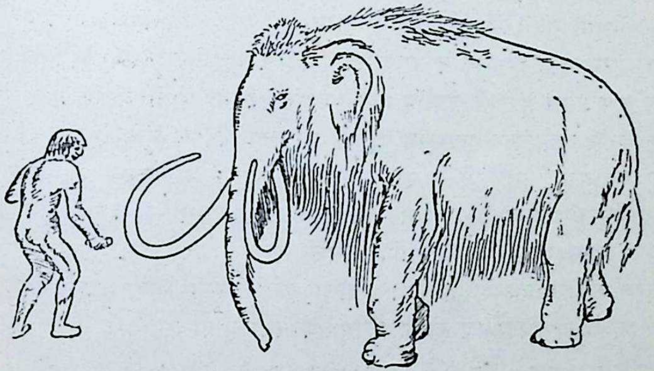

चित्र ४ : मैमथ और हीडलबर्ग-मानव

मध्यजीव अथवा सरीसृप-युग में स्तनपायी प्राणी बहुत कम थे और केवल ठण्डे प्रदेशों में रहते थे। नव-जीवयुग में उनकी संख्या और प्रकारों में अचानक वृद्धि हो जाती है और पृथिवी पर उनका उसी प्रकार शासन स्थापित हो जाता है जिस प्रकार मध्य-जीवयुग में सरीसृप और प्राचीन-जीवयुग में मत्स्य वर्ग का था। ऊँट, घोड़ा, हाथी, ज़िराफ, हिरण, कुत्ता, शेर, बन्दर और मनुष्य ये सभी इसी प्रकार के प्राणी हैं। इन प्राणियों का प्रादुर्भाव जीवन के इतिहास की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। अब तक जितने प्राणी सृष्टि में आये थे उनकी विशेषता यह थी कि उन्हें जन्म से ही आत्मनिर्भर होना पड़ता था। इसका कारण माता-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भूगर्भीय समय-खण्ड
और
विभिन्न प्राणियों के आविर्भाव के युग

(Geological Time-Scale of the Appearance of Various Representative Forms of Life)

युग (Age)	स्तृत-विभाजन (Period)	काल (Epoch)	आरम्भ का अनुमानित वर्ष (ई० पू०)	प्रमुख प्राणी (Forms of Life)
नवजीवयुग (Cainozoic)	चतुर्थक (Quaternary)	सर्वनूतन (Holocene)	१० सहस्र	आधुनिक मानव जातियाँ
		प्रातिनूतन (Pleistocene)	१० लाख	जावा मानव; पेकिंग-मानव; हीडलबर्ग-मानव (Hominids) स्वैन्सकोम्बे, फोंतेशें-वाद और स्टीनहीम मानव; नियण्डर्थल मानव; पूर्णमानव (Homo sapiens)
	तृतीयक (Tertiary)	अति नूतन (Pliocene)	७० लाख	मानव के पूर्वज जिनका अस्तित्व इयोलिथों से ज्ञात होता है।
		मध्य नूतन (Miocene)	२ करोड़	एन्थ्रोपॉयड-एप (Dryopithecus; Sivapithecus; Proconsul)
		आदि नूतन (Oligocene)	३ करोड़ ५० लाख	आदिम एन्थ्रोपॉयड-एप (Propliopithecus) तथा अन्य स्तनपायी प्राणी
		प्रादि नूतन (Eocene)	६ करोड़	प्रारम्भिक स्तनपायी प्राणी (Early Mammals; Tarsiers Lamuroids; Tarsicids)
मध्यजीव-युग (Mesozoic)	द्वितीयक (Secondary)	खटीयुग (Cretaceaus)	१२ करोड़ ५० लाख	कीटाहारी (Insectivorous) तथा आदिम स्तनपायी और पक्षी
		जुरासिक (Jurassic)	१६ करोड़	अनुस्तन्य; टेरोडेक्टाइल्स का प्रसार; दाँतों वाले पक्षी (Toothed Birds) और उड़ने वाले सरीसृप
		ट्राएसिक (Triassic)	१९ करोड़ ५० लाख	अंडस्तन्य; दिनोसॉर्स, टेरोडेक्टाइल्स (Pterodactyles)
प्राचीन-जीव-युग (Palaeozoic)	प्राथमिक (Primary)	परमियन (Permian)	२२ करोड़	उभयचरों का प्रसार; Trilobites का अन्त
		कार्बोनिफेरस (Carboniferous)	३० करोड़ ५० लाख	प्रारम्भिक सरीसृप (Primitive Reptiles); विशाल वन; स्थलीय मकड़ियाँ;
		डेवोनियन (Devonian)	३५ करोड़ ५० लाख	उभयचर प्राणी (Amphibians) मछलियाँ; वनों का प्रसार
		साइलुरियन (Silurian)	३९ करोड़ ५० लाख	जल बिच्छु (Sea scorpions); भूमि पर उगने वाले प्रारम्भिक पौधे
		ऑर्डोविशियन (Ordovician)	४८ करोड़	प्रारम्भिक मछलियाँ; Ostracoderms
		केम्ब्रियन (Cambrian)	५५ करोड़	भूमि पर जीवन अज्ञात; Trilobites; Mollusks; Brachiopods.
प्रारम्भिक (Proterozoic)		प्री-केम्ब्रियन (Precambrian)	१ अरब २० करोड़	बहुकोषी (Metazoa)
प्रजीव या अजीव युग (Archaeozoic)			२ अरब ७० करोड़	समुद्रजीवी एककोषी (Protozoa)

तालिका १

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पिता का शिशु को जन्म देते ही उससे पृथक हो जाना था। बच्चों में माता-पिता के साथ सम्बन्ध की कोई अनुभूति नहीं होती थी। लेकिन स्तनपायी प्राणियों के शिशु काफी समय तक माता-पिता पर निर्भर रहते थे। इससे उनमें परस्पर संवेदनात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता था। यह संवेदना केवल मूक ही नहीं होती थी; इन प्राणियों की वाक्-शक्ति भी अन्य प्राणियों से अधिक थी। इसलिए वे विभिन्न प्रकार की आवाजें करके अपना भाव प्रकट कर सकते थे। इसके दो परिणाम हुये। एक तो उनके शिशुओं के लिए माता-पिता के अनुभवों से लाभ उठाना सरल हो गया, जिससे उनकी बौद्धिक-चेतना का विकास हुआ। दूसरे, पारस्परिक सम्बन्धों की अनुभूति होने से सामाजिक भावना का जन्म हुआ। ये दोनों बातें सरीसृपों के लिए सम्भव नहीं थीं।

नर-वानर (Primate) परिवार

जीवशास्त्रियों ने स्तनपायी प्राणियों को कई वर्गों में विभाजित किया है। इनमें सर्वोच्च वर्ग **नर-वानरों** (Primates) का है, जिनमें एप, बन्दर, लंगूर और मानव इत्यादि आते हैं। इस वर्ग के प्राणियों में मादा के, साधारणतः वक्ष पर, दो स्तन-ग्रन्थियाँ होती हैं और वह एक बार में एक बच्चे को जन्म देती है। यह संख्या सामान्यतः दो-तीन से ऊपर नहीं जाती। यद्यपि इस वर्ग के प्राचीन अवशेष बहुत कम प्राप्त होते हैं तथापि यह विश्वास किया जाता है कि अब से लगभग चार करोड़ वर्ष पूर्व '**बन्दरसम**' प्राणी अस्तित्व में आ चुके थे। इन्हीं का धीरे-धीरे 'मनुष्यसम' प्राणियों के रूप में विकास हुआ। '**मनुष्यसम**' प्राणी के अस्तित्व के प्राचीनतम प्रमाण सम्भवतः ५-६ लाख वर्ष से अधिक पुराने हैं। यह प्राणी यद्यपि पूर्ण मनुष्य नहीं था तथापि इसकी आकृति और शरीर-रचना 'पूर्ण मनुष्य' से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। इसलिए यह अनुमान किया जाता है कि 'मनुष्य-सम' प्राणी ही विकसित होकर पूर्णमानव बना होगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मानव के उद्भव और विकास के दृष्टिकोण से नव-जीवयुग का, जिसे तृतीयक और चतुर्थक कालों में बाँटा जाता है, अत्यधिक महत्त्व है। अध्ययन की सुविधा के लिए विद्वानों ने इन कालों को और छोटे-छोटे युगों में बाँटा है। **तृतीयक** (Tertiary period) के चार भाग किये जाते हैं—

(अ) आदि-नूतन-युग (Eocene period): यह युग छः करोड़ वर्ष पूर्व से साढ़े-तीन करोड़ वर्ष पूर्व तक चलता है। इस युग में पृथिवी की जलवायु अब से अधिक उष्ण थी। जैसा हम देख चुके हैं इस युग में स्तनपायी प्राणियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई, लेकिन मनुष्य का प्रादुर्भाव अभी तक नहीं हुआ था।

(आ) आदि-नूतन-युग (Oligocene period): यह युग साढ़े-तीन करोड़

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वर्ष पूर्व से दो करोड़ वर्ष पूर्व तक चला। सम्भवतः इस युग में मानव की आकृति वाले छोटे-छोटे बन्दर सरीखे प्राणी अस्तित्व में आये।

(इ) मध्य-नूतन-युग (Miocene period): यह युग दो करोड़ वर्ष पूर्व से ७० लाख वर्ष पूर्व तक चला। हिमालय और आल्प्स् जैसे पर्वत सम्भवतः इसी युग में ऊँचे उठे। मनुष्य का अस्तित्व इस युग में भी दिखाई नहीं देता।

(ई) अति-नूतन अथवा प्लीयोसीन युग (Pliocene period): यह युग ७० लाख वर्ष पूर्व से दस लाख वर्ष पूर्व तक चला। सम्भवतः इस युग में मनुष्य से मिलते-जुलते प्राणी का पृथिवी पर सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ। इस दृष्टि से यह युग पूर्वगामी युगों से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

चतुर्थककाल (Quaternary) को दो भागों में बाँटा जाता है—प्लीस्टोसीन तथा होलोसीन। ये दोनों युग मानव के इतिहास से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं।

(ए) प्राति-नूतन अथवा प्लीस्टोसीन युग (Pleistocene period): यह युग अब से दस लाख वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और लगभग १२ सहस्र वर्ष पूर्व तक चला। इस काल में पृथिवी के जलवायु में बार-बार घोर परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों का कारण इस काल में उत्तरी प्रदेशों में चार बार भारी हिमपात होना है। **प्रथम हिम युग** (Ice Age) अब से लगभग छः लाख वर्ष पूर्व आया। इसके बाद पृथिवी का जलवायु पुनः सुधर गया। इसे प्रथम **अन्तर्हिम युग** (Inter-glacial Age) कहते हैं। दूसरा हिमयुग लगभग चार लाख वर्ष पूर्व और तीसरा एक लाख पचहत्तर हज़ार वर्ष पूर्व आया। इनके बाद भी उसी प्रकार दो अन्तर्हिम-[illegible]—दूसरा और तीसरा—आये। चौथा और अन्तिम हिमयुग अब से पचास हज़ार वर्ष पूर्व अपने चरम शिखर पर था। उसके बाद जलवायु में पुनः सुधार हुआ। आजकल हम चतुर्थ अन्तर्हिमयुग अथवा हिमोत्तर युग (Post-Glacial Age) में [illegible] रहे हैं। यूरोप में हिमयुगों का अध्ययन विशेष रूप से आल्प्स् पर्वतीय प्रदेश में किया गया है। वहाँ १९०९ ई० में पेंक (Penck) तथा ब्रयूक्नर (Bruckner) नामका विद्वानों ने अन्वेषण करके 'अलपाइन हिमयुग-क्रम' (Alpine Glac-[illegible] Cycle) की प्रसिद्ध अवधारणा रखी। उन्होंने इन चारों हिम युगों को क्रमशः गुंज (Gunz), मिन्डेल (Mindel), रिस्स (Riss), तथा वर्म (Wurm) नाम दिये हैं। उन्होंने यह भी खोज की कि द्वितीय अन्तर्हिमयुग अन्य दो अन्तर्हिमयुगों से बहुत बड़ा था। इसलिए उन्होंने इसे 'दीर्घ अन्तर्हिमयुग' (The Great Inter Glacial) नाम दिया। जिस समय उत्तरी प्रदेशों में हिमयुग आते थे, लगभग उसी समय दक्षिणी प्रदेशों में भारी वर्षा होती थी, इसलिए उन प्रदेशों के दृष्टिकोण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

से इन युगों को **'वर्षायुग'** (Pluvial Ages) और अन्तर्हिमयुगों के समय को **अन्तर्वर्षा यग** (Interpluvial Ages) कहते हैं (तालिका ३)। प्लीस्टोसीन युग में ही 'मानव सम' प्राणी शनैः-शनैः विकसित होकर 'पूर्ण मानव' के रूप में आता है। पुरातत्त्वविदों का पूर्व-पाषाणकाल इस युग के लगभग समानान्तर चलता है।

(ऐ) सर्व-नूतन अथवा होलोसीन युग (Holocene or Recent period): यह युग अब से १२ सहस्र वर्ष पर्व प्रारम्भ हुआ और अभी तक चल रहा है। मानव सभ्यता के उत्तर पाषाणकाल और धातुकाल इसके अन्तर्गत रखे जाते हैं। प्लीस्टोसीन और होलोसीन युगों में मानव के उद्भव और विकास तथा सभ्यता के निर्माण की मनोरंजक कथा का अध्ययन हम अगले अध्यायों में करेंगे।

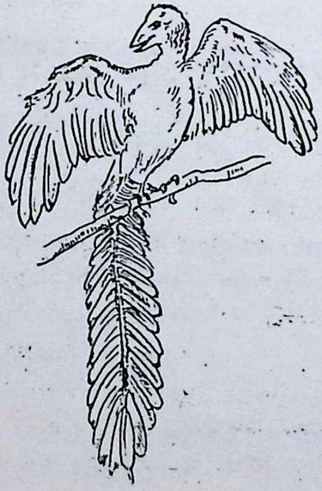

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

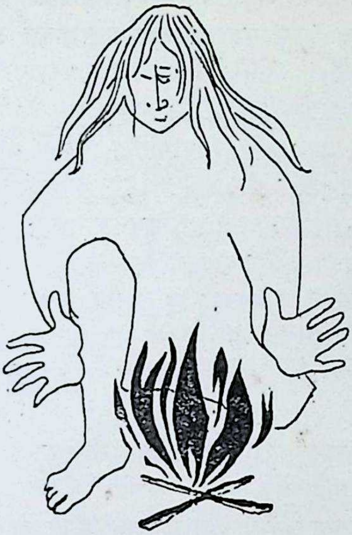

२

मनुष्य का आविर्भाव और प्रकृति पर विजय

So God created man in his own image, in the image of God created he him; male and female created he them. And God blessed them and God said unto them, Be fruitful, and multiply, and replenish the earth, and subdue it: and have dominion over the fish of the sea, and over the fowl of the air, and over every living thing that moveth upon the earth. —Genesis

मनुष्य का आविर्भाव

'लुप्त कड़ी' की समस्या—मनुष्य का प्रादुर्भाव कैसे हुआ, यह प्रश्न अभी तक समस्या बना हुआ है। विश्व के अधिकांश धर्मों में बताया गया है कि मनुष्य का निर्माण स्वयं ईश्वर ने किया था। लेकिन आधुनिक काल में नृवंश-शास्त्री विकासवाद (Theory of Evolution) के अनुसार (पृ० ४), जिसका सर्वप्रथम प्रतिपादन डार्विन ने अपनी पुस्तक *Descent of Man* में किया, यह मत प्रकट करते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हैं कि मनुष्य नर-वानर (Primate) परिवार का सदस्य है और उसके तथा इस परिवार के अन्य प्राणियों—बन्दर, लंगूर, गोरिल्ला, चिम्पांजी तथा एप इत्यादि के पूर्वज एक ही थे।[1] इन पूर्वजों का विकास स्तनपायी जीवों के किसी प्राचीनतर परिवार से और मूलतः प्रारम्भिक जीव-युग के प्राणियों से हुआ होगा। बहुत से मानवेतर प्राणियों, जैसे घोड़ा और ऊँट, का इस प्रकार का क्रमिक विकास सिद्ध करने योग्य साक्ष्य उपलब्ध हो गये हैं; परन्तु, अभाग्यवश मानव के विकास की क्रमिक अवस्थाओं को सिद्ध करने योग्य पर्याप्त सामग्री अभी तक नहीं मिल पायी है। उसके विकास के बीच की कड़ी जिसे नृवंशशास्त्री **लुप्त कड़ी** (Missing link) कहते हैं, अभी तक अज्ञात है। लेकिन इस कड़ी के न मिलने से यह सिद्ध नहीं होता कि विकासवाद एक दोषपूर्ण सिद्धान्त है। यह भी हो सकता है कि हम इन कड़ियों को खोजने में असफल रहे हों। जैसा कि हम देख चुके हैं प्राचीनतम मानव और अन्य प्राणियों के विकास का अध्ययन करने का प्रमुख साधन स्तरीय-चट्टानें हैं। स्मरणीय है कि स्तरीय चट्टानों में अधिकांशतः उन्हीं जीवों के अवशेष मिलते हैं जो जल में डूब जाते थे। लेकिन प्रारम्भिक मानव के तैरना न जानने के कारण गहरे जल में जाने और डबने की सम्भावना कम थी, इसलिए उसके प्रस्तरित अवशेष स्तरीय चट्टानों में विरल और दुष्प्राप्य हैं। दूसरे, स्तरीय-चट्टानों का अध्ययन सभी देशों में भलीभाँति नहीं हो पाया है। एशिया और अफ्रीका के विशाल भूखंड अभी तक अनन्वेषित ही हैं। इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीनतम मानवों की संख्या बहुत अधिक नहीं रही होगी। इसलिए उनके अवशेषों के पर्याप्त मात्रा में न मिलने और उनके विकास में कुछ कड़ियों का अभाव होने से विकासवाद को गलत नहीं कहा जा सकता।

मनुष्य का आदिपूर्वज—मनुष्य का आदि पूर्वज कौन सा प्राणी था, इसके विषय में बहुत सी भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित हैं। साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि विकासवादी मनुष्य का आदिपूर्वज बन्दर को मानते हैं। यह बात नहीं है। विकासवादी मनुष्य का विकास बन्दर से नहीं वरन् किसी 'एन्थ्रोपॉएड एप' से मानते हैं।

---

१. मनुष्य की प्राचीनता का प्रतिपादन सर्वप्रथम बूशे-द-पर्थ (Boucher de Perthes) नामक विद्वान् ने किया। उसने १८४७ ई० में सोम (Somme) नदी की घाटी में एब्बेविले स्थान से पुराने स्तर (Terrace) से एक मानव-निर्मित पाषाणोपकरण प्राप्त किया। इस उपकरण के साथ ऐसे प्राणियों के अस्थि-अवशेष मिले जिनकी प्राचीनता असंदिग्ध थी। १८५९ ई० में, जिस वर्ष डार्विन की *Origin of Species* पुस्तक प्रकाशित हुई, प्रेस्टविक, इवान्स तथा फाकोनेर नामक सुप्रसिद्ध अंग्रेज भूगर्भशास्त्रियों ने रॉयल सोसाइटी के सम्मुख पर्थ के दावे का समर्थन किया और १८६३ ई० में ल्येल (Lyell) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Geological Evidence of the Antiquity of Man प्रकाशित कराई।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राणी जगत् में मानव का स्थान

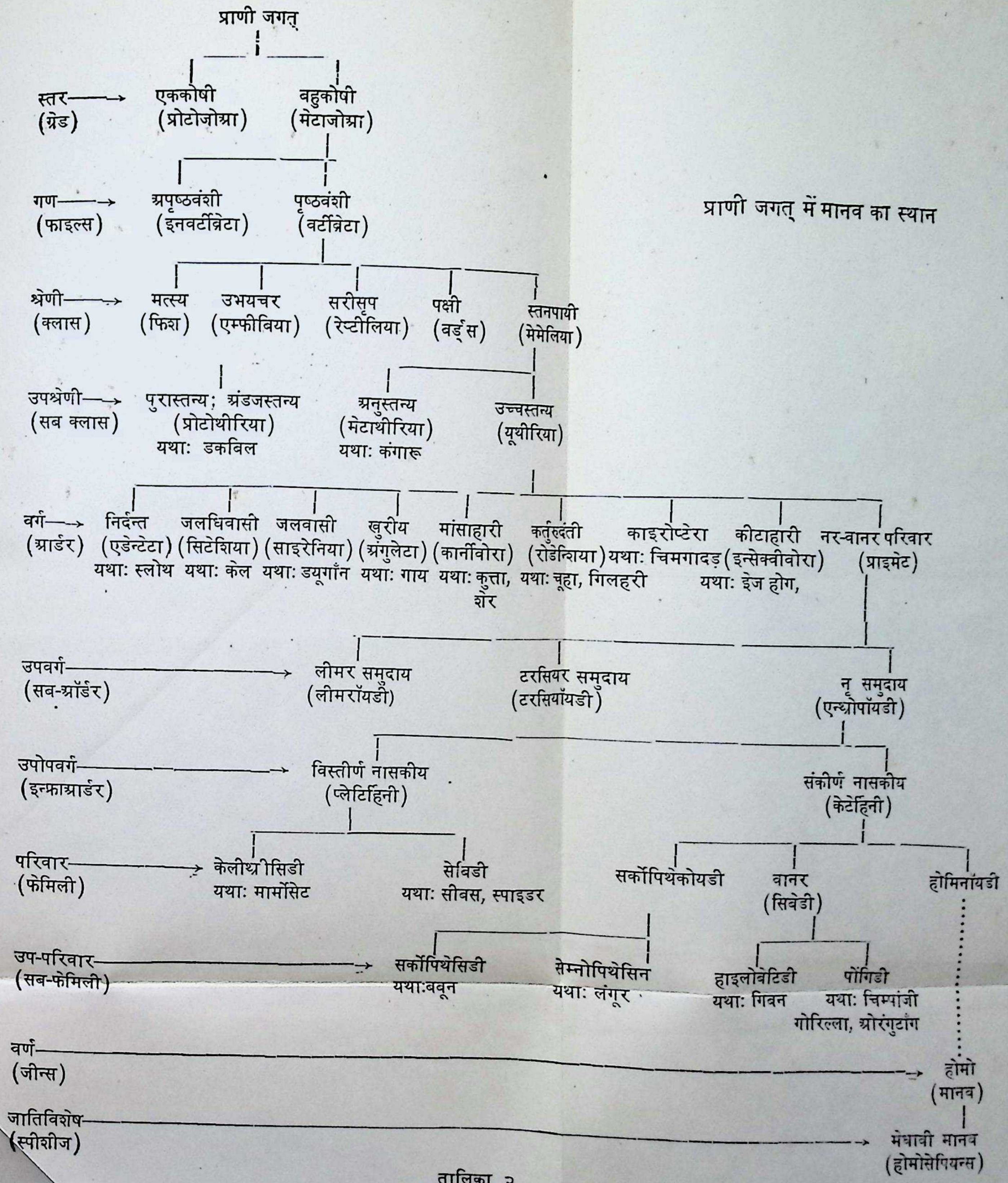

तालिका २

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उनका कहना है कि एप मनुष्य के समान पुच्छविहीन होते हैं और इनका रक्त मानव रक्त से मिलता है। यहाँ तक कि मनुष्य के रोग चिम्पांजी को और चिम्पांजी के रोग मनुष्य को हो सकते हैं। एन्थ्रोपॉएड एप की मादा का गर्भाशय मानवी के गर्भाशय के समान होता है। मनुष्य और एप का जीवनकाल भी लगभग बराबर होता है। ये सब बातें मनुष्य और बन्दर में समान नहीं होतीं। इसलिए विकासवादी मानव का आदि पूर्वज बन्दर को न मानकर किसी **एन्थ्रोपॉएड एप** को मानते हैं। लेकिन यह एप कौन सा था, इस विषय में मतभेद है। आजकल चार प्रकार के एन्थ्रोपॉएड एप ज्ञात हैं—गिब्बन, चिम्पांजी, गोरिल्ला तथा ओरंगुटाँग। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि मनुष्य का विकास दो-तीन प्रकार के एपों से हुआ, जैसे अफ्रीका के हब्शी किसी गोरिल्लासम प्राणी से, चीनी किसी ओरंगुटाँगसम जीव से और यूरोप की श्वेत जातियाँ किसी चिम्पांजीसम प्राणी से आविर्भूत हुईं। लेकिन आजकल जो सिद्धान्त प्रचलित है उसके अनुसार समस्त मानव जाति का एक ही प्रकार के प्राणी से विकास हुआ (तालिका २)। विद्वानों के अनुसार यह प्राणी एन्थ्रोपॉएड एप होते हुए भी गिब्बन, चिम्पांजी, ओरंगुटांग और गोरिल्ला से भिन्न था। इन चारों प्राणियों की शरीर-संरचना मनुष्य से मिलती-जुलती होने पर भी विस्तरशः इतनी भिन्न और विशिष्ट है और इनका मस्तिष्क-कोष इतना छोटा होता है कि इनको मनुष्य का पूर्वज मानना कठिन है। मनुष्य का पूर्वज एन्थ्रोपॉएड एप कैसा था, कहाँ उत्पन्न हुआ और उसकी शरीर-संरचना कैसी थी, ये सब विकासवादियों के लिए अभी तक समस्या मूलक प्रश्न बने हुये हैं। सम्भवतः यह प्राणी सीधा खड़ा होकर चलता था और भूमि पर रहता था, लेकिन पेड़ों पर आसानी से चढ़ लेता था। उसनें स्यात् नव-जीव-युग के प्रारम्भ में ही पेड़ों पर रहना छोड़ दिया था। उसका मस्तिष्क-कोष ज्ञात एन्थ्रोपॉएड एपों के मस्तिष्क-कोषों से बड़ा, कपाल कुछ गुम्बदाकार और नाक का अग्र भाग बन्दरों के समान चपटा न होकर कुछ उठा हुआ होता होगा। उसके शरीर पर अन्य एपों से बाल कम रहे होंगे या बिल्कुल नहीं होंगे। इस अज्ञात प्राणी को मानव विकास की लुप्त कड़ी (Missing link) कहा जाता है। इस कड़ी की खोज करते-करते विद्वानों ने प्राचीन मानवसम प्राणियों के अनेक प्रस्तरित अस्थि-अवशेष खोज निकाले हैं। इनसे लुप्त कड़ी की समस्या तो अभी तक नहीं सुलझ पाई है लेकिन ऐसे बहुत से प्राणियों का पता चला है जो मनुष्य से मिलते-जुलते होने पर भी 'पूर्ण मनुष्य' (Homo sapiens) नहीं थे। इन प्राणियों को नृवंश-शास्त्री **'मानवसम'** (Hominid) कहते हैं। मानव संस्कृति के इतिहास का प्रथम अध्याय लिखने वाले मानव वास्तव में 'पूर्ण मानव' (Homo sapiens) न होकर 'मानवसम' (Hominid) प्राणी ही थे। उन्होंने ही सर्वप्रथम यह सिद्ध किया कि मनुष्य अन्य प्राणियों से उच्चतर है और प्रकृति पर विजय पाने की क्षमता रखता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मनुष्य की सफलता का रहस्य

मनुष्य की प्रकृति और अन्य प्राणिग्रों पर विजय के कारण—मनुष्य एक स्तनपायी प्राणी है। उसके शिशु को जन्म लेने के बाद वर्षों तक माता-पिता की संरक्षता में रहना पड़ता है। इससे उसे न केवल अपने माता-पिता के वरन् समस्त **समाज के सामूहिक अनुभवों से लाभ** उठाने का अवसर मिलता है। इस प्रकार सामूहिक अनुभवों का भंडार भरता रहता है। इसके विपरीत अन्य प्राणियों को अधिकाँशतः जीवन में अकेले संघर्ष करना पड़ता है और अपने ही अनुभवों के अनुसार चलना होता है। लेकिन यह कहा जा सकता है कि यह सुविधा सभी स्तनपायी प्राणियों को प्राप्त है। यह भी स्पष्ट ही है कि प्राचीनतम मनुष्य संख्या में और शारीरिक शक्ति के क्षेत्र में शेर, गजराज और भालू इत्यादि के साथ प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकता था। फिर मनुष्य को ही प्रकृति तथा अन्य प्राणियों पर विजय प्राप्त करने में सफलता क्यों मिली ?

मनुष्य को जीवन-संघर्ष में अन्य प्राणियों पर विजय प्राप्त करने में सफलता मिली, इसका कारण है उसकी **अपने को वातावरण के अनुकूल बना लेने की क्षमता**। उसको प्रकृति ने ऐसा वनाया है जिससे वह अन्य प्राणियों की तुलना में कठिनाइयों पर अधिक आसानी से विजय प्राप्त कर सकता है। वह जिन उपकरणों से सहायता लेता है वे अन्य प्राणियों के उपकरणों से सर्वथा भिन्न और उच्चकोटि के होते हैं। इनमें वाक्-शक्ति, मस्तिष्क और हाथ प्रमुख हैं।

(१) मनुष्य की **वाक्-शक्ति** अन्य प्राणियों से अधिक समुन्नत है। वह अपने गले से विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ निकाल सकता है। यह लाभ कुछ अन्य प्राणियों को भी प्राप्त है परन्तु मनुष्य जितने प्रकार की ध्वनियाँ कर सकता है उतनी अन्य प्राणी नहीं कर सकते। सामाजिक जीवन व्यतीत करने का उसे एक लाभ यह भी हुआ कि वह इन ध्वनियों को सर्वसम्मत अर्थ दे सका। मानव-शिशु जब बोलना सीखता है तब इसका अर्थ होता है, उसका इन ध्वनियों के सर्वसम्मत अर्थों को जानना। हम इनको भाषा कहते हैं। भाषा के माध्यम से सामाजिक अनुभवों से लाभ उठाने अर्थात ज्ञानोपार्जन में सुविधा होती है। उदाहरणार्थ इससे मनुष्य अपने बच्चे को बता सकता है कि उसे शेर के दिखाई देने पर क्या करना चाहिए। भाषाहीन प्राणी अपने शिशुओं को यह शिक्षा नहीं दे सकते।

(२) सामाजिक अनुभवों और भाषा के माध्यम से मनुष्य की **विचार-शक्ति** समुन्नत होती है। जब हम नारंगी शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारे मस्तिष्क में वास्तविक नारंगी के स्थान पर नारंगी का भाव-चित्र होता है। इस प्रकार के भाव-चित्रों को मिलाकर असंख्य भाव-चित्रों को, जिनका वास्तविक जीवन से

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कोई सम्बन्ध नहीं होता, उत्पन्न किया जा सकता है। उदाहरण के लिए हम 'वृक्ष' और 'चाँदी' के भावों को मिलाकर 'चाँदी का पेड़' भाव उत्पन्न कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम सोच सकते हैं। सोचने या विचार कर सकने की शक्ति मनुष्य का सबसे बड़ा हथियार है। भाषा से तो उसे केवल अपने माता-पिता और समाज के अनुभवों का लाभ प्राप्त होता है परन्तु विचार-शक्ति की सहायता से वह कठिनाइयों पर स्वयं विजय प्राप्त कर सकता है। आग कपड़े को जला सकती है, यह बात मनुष्य कपड़े को जलते हुए देखे बिना सोच सकता है। यह शक्ति अन्य जीवों को प्राप्त नहीं है।

(३) मनुष्य के हाथ पहले अन्य चतुष्पदों के अगले पैरों की तरह शरीर का भार ढोने के काम में आते थे। बाद में जब मनुष्य दो पैरों पर खड़ा होकर चलने लगा तो उसके अगले पैर अर्थात हाथ स्वतन्त्र हो गये। इनसे मनुष्य विविध प्रकार की क्रियाएँ कर सकता है। अन्य प्राणियों के हथियार अर्थात् पंजा, चोंच, और नाखून इत्यादि उनके शरीर के साथ जुड़े होते हैं और कुछ सीमित प्रकार की क्रियाएँ ही कर सकते हैं। लेकिन मनुष्य के हाथ के अँगूठे और अंगुलियों की बनावट ऐसी है कि वह इनसे अनेक प्रकार के हथियार और **उपकरण बना सकता है**। यह सुविधा भी अन्य प्राणियों को प्राप्त नहीं है।

मानव सभ्यता के प्रमुख युग

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनुष्य और अन्य प्राणियों में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि मनुष्य अपनी सुरक्षा और आजीविका के लिए हथियारों और औज़ारों का निर्माण करता है जबकि अन्य प्राणियों के हथियार उनके शरीर के साथ जुड़े होते हैं। इसका आशय यह नहीं है कि मनुष्य आदिकाल से ही हथियारों का निर्माण करना जानता था। प्रारम्भ में वह निश्चित रूप से वृक्षों की डालों और नैसर्गिक प्रस्तर-खण्डों का हथियार के रूप में प्रयोग करता था। दूसरे शब्दों में वह औजार-निर्माता के बजाय **औजार-उपभोक्ता** मात्र था। धीरे-धीरे अनुभव बढ़ने पर उसने स्वयं हथियार बनाना सीखा। यह स्पष्ट है कि उसके प्रारम्भिक औज़ार और हथियार बहुत साधारण रहे होंगे। लेकिन ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया उसके हथियार अधिकाधिक सुन्दर, मजबूत और उपयोगी होते गये। अतः मनुष्य के औज़ार वस्तुतः उसकी यान्त्रिक, औद्योगिक और वैज्ञानिक सफलताओं के प्रतीक हैं। इन हथियारों और औजारों को बनाने में उसने जिन द्रव्यों का उपयोग किया उनके अनुसार पुरातत्त्ववेत्ताओं ने सभ्यता के इतिहास को दो भागों में विभाजित किया है—पाषाणकाल और धातुकाल। अध्ययन की सुविधा के लिए इन कालों को लघुतर युगों में बाँटा जा सकता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(१) **पाषाणकाल** (The Stone Age): मानव-सभ्यता के इतिहास का प्रथम युग पाषाणकाल कहलाता है, क्योंकि इस काल में मनुष्य के हथियार और औज़ार मुख्यत: पाषाण के बनते थे। इस दीर्घकाल में, जो लगभग प्लीस्टोसीन युग के समानान्तर चलता है, मानव के इतिहास का लगभग ९९% अंश आ जाता है। उसने अपने अस्तित्व के प्रारम्भ में जो पाषाण उपकरण बनाये वे देखने में स्वाभाविक प्रस्तर-खण्डों के समान लगते हैं। इन उपकरणों को इयोलिथ (Eolith) और उस युग को, जिसमें इनका निर्माण हुआ, **पाषाणयुग का उषःकाल** (Eolithic Age) कहते हैं।

प्रथम अन्तर्हिमयुग से हमें ऐसे पाषाण-औज़ार मिलने लगते हैं जिनको मानव-निर्मित कहने में कोई सन्देह नहीं हो सकता। ऐसे पाषाण उपकरणों को तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है :—

(अ) **पूर्व-पाषाणकाल**—(Palaeolithic Age or Old Stone Age): यह युग अब से पाँच-छः लाख वर्ष पूर्व से लगभग १२ हज़ार वर्ष पूर्व तक चला। इस काल में मानव की आजीविका शिकार और जंगली फलमूल पर निर्भर थी। वह पशु-पालन या कृषि-कर्म से परिचित नहीं था। उसके हथियार भी, कम-से-कम **प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल** (Early Palaeolithic Age) में, बहुत भद्दे और बेडौल होते थे। लेकिन **मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में** (Middle Palaeolithic Age), जिस समय यूरोप में **नियण्डर्थल जाति** निवास करती थी, कुछ अच्छे हथियार बनने लगे। नियण्डर्थल-युग का अन्त अब से लगभग तीस-चालीस सहस्र वर्ष पूर्व हुआ। उस समय तक विश्व में जितनी मानव जातियाँ रहीं, वे सब आधुनिक मानव जाति से मिलती जुलती होने पर भी शरीर-संरचना की दृष्टि से कुछ भिन्न थीं। लेकिन **परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल** (Upper Palaeolithic Age) में जो जातियाँ दिखाई देती हैं वे निश्चित रूप से आधुनिक **मेधावी मानव जाति** (Homo sapiens) की पूर्वज थीं। इस काल के मानवों की कलाकृतियाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। आज भी मलाया, दक्षिणी अफ्रीका तथा उत्तर-पश्चिमी आस्ट्रेलिया में ऐसी जातियाँ हैं जिनका रहन-सहन पूर्व-पाषाणकालीन मानवों के ढंग का है।

(आ) **मध्य-पाषाणकाल** (Mesolithic or Middle Stone Age): पूर्व-पाषाणकाल और नव-पाषाणकाल के मध्य में कुछ स्थानों पर मानव संस्कृति ऐसे संक्रान्ति-काल से गुज़रती है जिसे पुरातत्त्व में मध्य-पाषाणकाल कहा जाता है। शेष स्थानों पर पूर्व-पाषाणकाल के पश्चात् उत्तर-पाषाणकाल तुरन्त प्रारम्भ हो जाता है।

(इ) **उत्तर-पाषाणकाल** (Neolithic or New Stone Age): अब से लगभग

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दस सहस्र वर्ष पूर्व मानव सभ्यता का दूसरा युग प्रारम्भ हुआ। भगर्भशास्त्र की दृष्टि से यह होलोसीन काल का पूर्ववर्ती भाग कहा जा सकता है। इस काल में मनुष्य ने पॉलिशयुक्त सुन्दर पाषाण उपकरण बनाये और बढ़ती हुई आबादी की समस्या को हल करने के लिए पशुपालन और कृषि करना प्रारम्भ किया। इससे उसकी आर्थिक व्यवस्था पूर्व-पाषाणकाल से एकदम परिवर्तित हो जाती है। बहुत से स्थानों पर आदिम जातियाँ आज भी इस प्रकार की जीवन-प्रणाली अपनाये हुए हैं।

(२) **धातुकाल**—धातुकाल अब से ६-७ सहस्र वर्ष पूर्व सिन्धु नदी की घाटी से लेकर मिश्र और क्रीट तक विस्तृत भूप्रदेश में प्रारम्भ हुआ। इसको हम तीन भागों में बाँट सकते हैं:—

(अ) **ताम्रकाल**—धातुकाल के प्रारम्भ में लगभग दो सहस्र वर्ष से अधिक समय तक मनुष्य मुख्यत: ताम्र को अपने अस्त्र-शस्त्र और उपकरण बनाने के लिये प्रयुक्त करता रहा। ताम्र के उपयोग के साथ पाषाण का प्रयोग भी बराबर होता रहा, इसलिए इस युग को **ताम्र-प्रस्तरयुग** भी कहा जाता है। इस युग में पाल-दार नाव, पहिये और कुम्हार का चाक आविष्कृत हुए तथा पहिये और पशुओं की भारवाहक शक्ति के संयोग से बैलगाड़ियाँ बनाई गईं। इन आविष्कारों के परिणाम-स्वरूप समाज में विशिष्ट वर्ग अस्तित्व में आये तथा व्यक्ति और ग्रामों की आत्म-निर्भरता कम हुई।

(आ) **काँस्यकाल**—ताम्रकाल के अन्त में मनुष्य ने ताम्र में टिन मिलाकर काँस्य बनाने की विधि का आविष्कार किया। इससे अधिक मजबूत उपकरण बनाना सम्भव हो गया। काँस्य के उपकरण बनाने वाले कारीगरों तथा काँस्य प्राप्त करने वाले तथा इससे निर्मित उपकरणों का आयात-निर्यात करने वाले व्यापारियों के लिए कृषि-कर्म में रुचि लेना सम्भव नहीं था। समाज के कुछ वर्गों के खाद्यान्न-उत्पादन से दूर हट जाने और आबादी बढ़ जाने के कारण अधिकाधिक भूमि में कृषि करने की आवश्यकता हुई। इसलिये इस युग में मनुष्य नदियों की उर्वर घाटियों में बसने लगता है जिससे बाँध बनाकर और नहरें निकाल कर वह भूमि की उर्वरता से लाभ उठा सके। परन्तु नदियों को नियन्त्रित करने के लिए विशाल मानव समूहों का स्थायी रूप से एक स्थान पर रहना आवश्यक था। इससे धीरे-धीरे **नगर** अस्तित्व में आये। इन नगरों के शासकों को अपने व्यापारियों के काफ़िलों की सुरक्षा और आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए सैनिकों, क़ानूनों और न्यायालयों की तथा हिसाब-किताब रखने के लिये लिपिकों की आवश्यकता पड़ी। **लिपि** का आविष्कार हो जाने से नगर-सभ्यताओं के उदय के साथ-साथ ऐतिहासिक युग भी प्रारम्भ हो जाता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(इ) **लौहकाल**—लगभग १२०० ई० पू० में पश्चिमी एशिया में लोहे का साधारण उपकरण बनाने के लिये प्रयोग किया जाने लगा। लोहा काँस्य की तुलना में अधिक आसानी से सुलभ हो जाता था और इससे बने हथियार तथा औज़ार अधिक प्रभावकारी और टिकाऊ होते थे। कृषि कर्म में भी लोहे के औजारों का प्रयोग करके उत्पादन बढ़ाया जा सकता था। अतएव तब से लोहा मानव के प्रयोग में आने वाली प्रमुखतम धातु बन गया। आज भी हम वस्तुतः लौहयुग में ही रह रहे हैं।

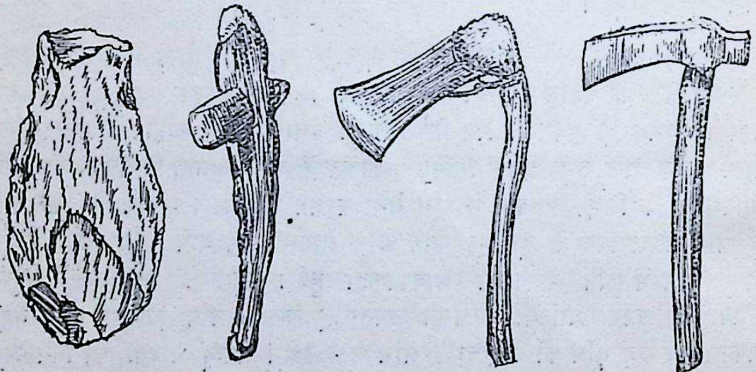

ऊपर दिये गये चित्र में प्रागैतिहासिक मानव के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हथियार—कुल्हाड़ी—के क्रमिक विकास की अवस्थाएँ अङ्कित की गई हैं। (१) पर्व-पाषाणकालीन मानव का मुष्टि-छुरा; (२) नव-पाषाणकालीन मानव की पॉलिशदार लकड़ी के हत्थे वाली कुल्हाड़ी का नमूना; (३) काँस्य काल की खोखली कुल्हाड़ी जिसे लकड़ी के हत्थे में लगाकर बाँध दिया जाता था, और (४) रोमन युग की लोहे की कुल्हाड़ी जिसका प्रयोग भारत में अब तक होता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

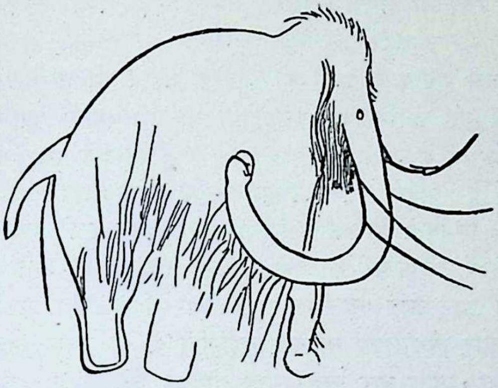

३

पाषाणकाल का उषःकाल

पाषाण काल का प्रारम्भ

प्रारम्भिक उपकरण—प्राचीनतम मानव के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या तत्कालीन बनैले पशुओं से अपनी रक्षा करना और खाद्य-सामग्री एकत्र करना था। वह अन्य पशुओं से संख्या में कम था और शारीरिक शक्ति की दृष्टि से भी उनसे प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकता था। परन्तु, जैसा कि हम देख चुके हैं, उसके हाथों की बनावट अन्य किसी भी प्राणी के हाथों की बनावट से उत्तम थी। वह इनकी सहायता से मिट्टी और पत्थर के ढेलों तथा वृक्षों की डालों को हथियार के रूप में प्रयुक्त करके अपनी शारीरिक शक्ति की कमी को पूरा कर सकता था। जिस प्रकार हम पेड़ से फल तोड़ने, नारियल जैसे कठोर फल को फोड़ने तथा किसी उद्धत पशु को भगाने के लिये छड़ी या पत्थर का ढेला उठा लेते हैं, उसी प्रकार आदि मानव भी वृक्षों से फल तोड़ने, कन्द मूल खोदकर निकालने तथा पशुओं को मार भगाने के लिये इनसे सहायता लेता था। लेकिन ये हथियार

इस पृष्ठ के ऊपर दिया गया चित्र परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल के एक कलाकार की कृति है। इस चित्र में कलाकार मैमथ के आकार को स्वाभाविक रूप में दिखाने में पूर्णतः सफल हुआ है। द्रष्टव्य है कि उसने मैमथ के दो पैरों का केवल संकेत दिया है, फिर भी चित्र की स्वाभाविकता में कमी नहीं आ पाई है। तुलना कीजिए आधुनिक कलाकार द्वारा बनाई गई मैमथ की आकृति से (चित्र ४, पृ० ११)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बहुधा अपने नैसर्गिक रूप में होते थे, अतः इनको मानव-निर्मित उपकरणों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। दूसरे, लकड़ी एक नश्वर द्रव्य है। इसके बने हुए इतने पुराने उपकरणों के नमूने आजकल प्राप्त नहीं हो सकते। इसलिए अगर प्राचीनतम मनुष्य ने **वृक्षों की नैसर्गिक डालों को** अधिक उपयोगी बनाने के लिये उनमें कुछ सुधार किया भी होगा तो उसे जानने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन पत्थर के साथ यह बात नहीं है। यह एक बहुत ही मज़बत और टिकाऊ पदार्थ है। मनुष्य इसकी उपयोगिता से बहुत प्राचीन युग में ही परिचित हो गया था। विशेषतः छोटे-छोटे पशुओं का शिकार करने और माँस को खाल से पृथक करने में उसे पत्थर के टुकड़े से बहुत सहायता मिलती थी। ऐसे पत्थर के टुकड़े उसे इधर-उधर पड़े मिल जाते थे। लेकिन जब प्रस्तर-खण्ड उसकी आवश्यकतानुसार नोकीले या धारदार नहीं होते थे तो उन्हें तोड़कर इच्छित रूप देना पड़ता था। एक बार प्रस्तर-खण्ड तोड़कर उसे इच्छित रूप देने का भाव आ जाने पर प्रगति सहज हो गई। उसको धीरे-धीरे यह समझ में आ गया कि ऐसे औजारों से न केवल माँस को खाल से पृथक किया जा सकता है वरन् और बहुत से काम लिये जा सकते हैं।

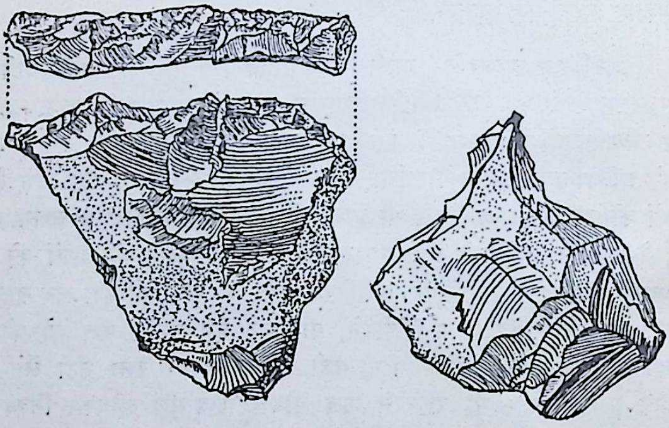

चित्र ६ : उषः पाषाणकालीन उपकरण

इयोलियों की समस्या—लेकिन इसका आशय यह नहीं है कि मनुष्य को एकदम विविध प्रकार के सुन्दर हथियार बनाना आ गया था। इसके विपरीत उसको यह कला सीखने में सहस्रों ही नहीं लाखों वर्ष लगे। उसके द्वारा बनाए गये प्राचीनतम हथियार देखने में बिलकुल नैसर्गिक पाषाण-खण्ड प्रतीत होते हैं। इनके बनाने में किसी प्रकार के कौशल का प्रदर्शन नहीं किया गया है, केवल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हाथ में ठीक से पकड़ने या इच्छित नोक बनाने के लिये प्रस्तर-खण्ड का कुछ अंश तोड़ दिया गया है (चित्र ६)। इनमें और स्वाभाविक प्रस्तर-खण्ड में भेद करना बड़ा कठिन है। इसलिए पुरातत्त्ववेत्ताओं में पिछली शताब्दी के अन्तिम दशक से ही, जब ये उपकरण सर्वप्रथम प्रकाश में आये, यह विवाद चल रहा है कि इनको नैसर्गिक प्रस्तर-खण्ड माना जाय या मानव-निर्मित-औज़ार। आजकल अधिकांश विद्वान् इन्हें मानव-निर्मित मानते हैं। इन हथियारों की तिथि प्लीयोसीन युग के अन्तिम भाग से लेकर प्रथम अन्तर्हिमयुग तक मानी जाती है। पुरातत्त्ववेत्ता इनको **इयोलिथ** या 'उषःकालीन पाषाण उपकरण' (Eolith या Dawn Stone) और जिस युग में ये निर्मित हुए उसे 'उषःकालीन पाषाणयुग' (Eolitbic Age) कहते हैं।

उषःपाषाणकालीन मानव का जीवन—उदयकालीन पाषाणयुग में मनुष्य सम्भवतः छोटे-छोटे समूहों में रहता था। उसका समय भोजन की खोज करने और अन्य पशुओं से अपनी रक्षा करते रहने में व्यतीत होता था। उसका **भोजन** साधारणतः जंगली बेर, फल, अखरोट, कन्दमूल और आसानी से सुलभ होने वाले कीट इत्यादि थे। वह सम्भवतः छोटे-छोटे पशुओं और पक्षियों का शिकार भी करता था। उसके सम्बन्धी, नर-वानर परिवार के अन्य सदस्य, शाकाहारी थे, लेकिन स्वयं उसने अपने अस्तित्व के किसी युग में **माँसाहार** प्रारम्भ कर दिया था। क्योंकि पर्व-पाषाणकाल के प्रारम्भ में मनुष्य घोर माँसाहारी था, अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि पाषाणयुग के उदयकाल में भी वह माँस खाता होगा। अफ्रीकी-मानव के (ऑस्ट्रेलोपिथिकस अफ्रीकेनस्), जिसका सम्बन्ध इस युग से प्रतीत होता है, माँसाहारी होने के कुछ प्रमाण मिलते हैं। मांसाहार करने से मनुष्य को बहुत सुविधा हुई, क्योंकि अब वह ऐसे स्थानों पर भी रह सकता था जहाँ फल-मूल न मिलते हों। वह आग का उपयोग जानता था या नही, यह कहना कठिन है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४

प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल

मानव जातियाँ

मानव के विकास का आदिस्थल—हम देख चुके हैं कि मानव सभ्यता के इतिहास का प्रथम अध्याय लिखने वाले प्राणी पूर्णमानव (Homo sapiens) न होकर मानवसम (Hominid) थे। उन्होंने ही प्रारम्भिक और मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में, अर्थात अब से ५-६ लाख वर्ष पूर्व से लगभग ३०-३५ हज़ार वर्ष पूर्व तक, विश्व के विभिन्नप्रदेशों में मानव सभ्यता की आधार शिला रखी। वस्तुत: मनुष्य के इतिहास का ९५% भाग 'मानवसम' प्राणियों का इतिहास है। परन्तु अभाग्यवश हम अभी तक निश्चित रूप से नहीं जान पाये हैं कि इन मानवसम प्राणियों का उद्‌भव सर्वप्रथम किस प्रदेश में हुआ। अब से कुछ वर्ष पहले तक जावा और पेकिंग से प्राप्त प्रस्तरित अस्थि-अवशेषों के आधार पर यह धारणा प्रचलित थी कि मनुष्य का उद्‌भव एशिया में हुआ। तदनन्तर 'पिल्टडाउन मानव' के आधार पर यूरोप के पक्ष में मत प्रकट किया जाने लगा। आजकल बहुत से विद्वान् अफ्रीका को मानव जाति का जन्म स्थान मानने लगे हैं, क्योंकि यहाँ पर प्राप्त 'मानवसम-एप' के अवशेषों को अब प्राचीनतम होने का श्रेय दिया जाता है।

दक्षिणी अफ्रीका के 'मानवसम एप'—सन् १९२४ ई० में रोडेशिया (अफ्रीका) में टांग्स नामक स्थान पर रैमन्ड ए० डार्ट नामक विद्वान् ने एक बालक के कपाल के प्लीस्टोसीनकालीन प्रस्तरित अवशेष खोज निकाले। यह खोपड़ी किसी ऐसे प्राणी की थी जो एप होते हुए भी बहुत सी बातों में मनुष्य से मिलता-जुलता था। इस प्राणी को विद्वानों ने 'अफ्रीकी एप' अथवा 'ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्' नाम दिया गया (चित्र १०)। सन् १९३५ ई० में तथा उसके बाद इस जाति के प्राणियों के अन्य बहुत से अवशेष प्राप्त हुए। इनका अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि इस जीव के दाँत मनुष्य के समान थे। डा० ब्रुम का विचार है कि यह प्राणी सीधा खड़ा होकर चल सकता था और सम्भवत: छड़ी और पत्थरों का शस्त्र रूप में प्रयोग करता था। सन् १९५५ में डार्ट को इन अस्थियों के पास कुछ प्रस्तर-खण्ड मिले जो उसके अनुसार 'ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्' के औजार रहे होंगे। उसका मस्तिष्क-कोष ५०० घन सेन्टीमीटर से ७०० घन सेन्टीमीटर था, जबकि आधुनिक मनुष्य का मस्तिष्क-कोष साधारण १३५० घन सेन्टीमीटर होता है। सर आर्थर कीथ का कहना है

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कि मानव के आदि पूर्वज का हम जो चित्र खींच सकते हैं, ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस् उससे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इस मत को १९५२ ई० में जोहन्सबर्ग के पास वार्तक्रान्स स्थान पर प्राप्त अस्थियों से बहुत बल मिला। इन में अधिकाँश अस्थियां ऑस्ट्रेलोपिथेकस की हैं, लेकिन एक अस्थि उससे मिलती जुलती होने पर भी उच्चतर कोटि की है। इस अस्थि के प्राणी को **'टैलेन्थ्रोपस्'** नाम दिया गया है। इन अस्थियों से अफ्रीका को मानव का उद्भव-स्थान माननेवालों के मत को बहुत बल मिला। लेकिन अधिकांश विद्वान् अभी यह स्वीकार नहीं करते कि 'ऑस्ट्रेलोपिथेकस' ही 'लुप्त कड़ी' हैं और समस्त मानव जाति उसकी सन्तान है। एक तो उसका मस्तिष्क-कोष बहुत छोटा था। दूसरे, उसके कपाल की संरचना मनुष्य के स्थान पर गोरिल्ला के कपाल की संरचना से अधिक मिलती है। इसलिए अधिक सम्भव यही लगता है कि ऑस्ट्रेलोपिथेकस मानव का आदि पूर्वज न होकर उस पूर्वज़ का कोई निकट सम्बन्धी था।

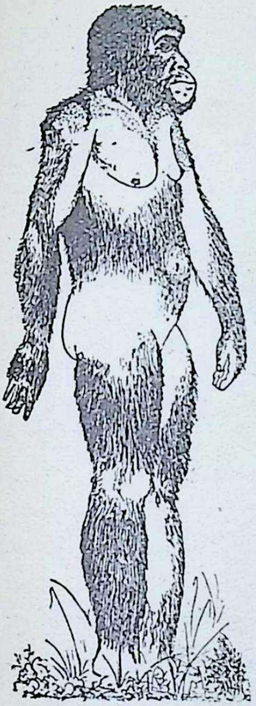

चित्र १०: ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्

मध्य अफ्रीका के मानवसम प्राणी—मध्य अफ्रीका से भी प्राचीन मानवों के कुछ प्रस्तरित-अवशेष प्राप्त हुये हैं। केनिया में कनाम नामक स्थान के पास लीके नामक विद्वान् ने १९३२ ई० में कुछ अस्थियाँ प्राप्त कीं। ये अस्थियाँ प्रारम्भिक-प्लीस्टोसीन युग की हैं और विश्व की प्राचीनतम मानव अस्थियाँ कही जाती हैं। इन अस्थियों के जबड़े के निचले भाग से पता चलता है कि इस मानव की ठोड़ी आधुनिक मानव से मिलती-जुलती थी। इसी प्रकार अल्जीरिया में टरनीफाइन स्थान से तीन जबड़ों की अस्थियाँ मिली हैं। इन अस्थियों के मानव को **एटलेन्थ्रोपस्** (Atlanthropu.) कहा जाता है। इसकी शरीर-संरचना सम्भवतः पिथेकेन्थ्रोपस से मिलती-जुलती थी। यह मानव चैलियन-युग में विचरण कर रहा था, क्योंकि इस युग के कुछ उपकरण इन अस्थियों के साथ प्राप्त हुए हैं।

एशिया के 'मानवसम' प्राणी—जिस प्रकार कुछ विद्वान् 'ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्' की अस्थियों के कारण अफ्रीका को मानव के विकास का आदि स्थल मानते हैं, उसी प्रकार ऑसवार्न तथा यजीन डुबॉय जैसे विद्वान् जावा-मानुष, 'पिथे-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

केन्थ्रोपस मोइजोकरटेन्सिस्' तथा 'पेकिंग-मानव' के आधार पर एशिया को यह श्रेय प्रदान करते हैं।

जावा के प्राचीन प्रस्तरित-अवशेषों को खोज निकालने का श्रेय यूजीन डुबॉय को है। उन्होंने १८९१ ई० में जावा के ट्रिनिल नामक स्थान से एक जंघास्थि, कपाल और

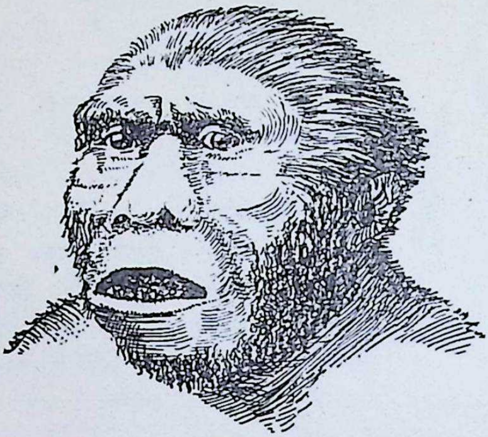

चित्र ११ : जावा-मानव

दो दांत मिलने की घोषणा की। इन अस्थियों के मानव को **'जावा-मानव'** (चित्र ११) कहा जाता है। क्योंकि यह प्राणी सीधा खड़ा होकर चल सकता था, इसलिए इसे **पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस्** भी कहते हैं। इस मानव का मस्तिष्क-कोष ९०० घन सेन्टीमीटर था—अर्थात चिम्पाजी के मस्तिष्क-कोष से बड़ा और पूर्णमानव के मस्तिष्क-कोष से छोटा। इससे स्पष्ट है कि वह ज्ञात एन्थ्रोपॉएड-एपों से अधिक विकसित था। उसका मस्तिष्क-कोष ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस् के मस्तिष्क-कोष से भी बड़ा था। वह दो पैर पर खड़ा हो सकता था, दौड़ सकता था और अपने हाथों का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग कर सकता था। फ्रेडरिक टिलनी और इलियट स्मिथ इत्यादि विद्वानों का विचार है कि यह मानव बोलना भी जानता था।

१९३६ ई० में कोर्यनिग्स्वाल्ड नामक विद्वान् को पूर्वीय जावा के माइजोकर्टो नामक स्थान पर एक मानव-शिशु की खोपड़ी मिली। वह स्तर, जिसमें यह खोपड़ी मिली, पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस् के पहले का है। इस खोपड़ी का मानव-शिशु भी एन्थ्रोपॉएड-एप से अधिक विकसित था। विद्वानों ने उसे **'पिथेकेन्थ्रोपस माइजोकरटेन्सिस्'** नाम दिया है। जावा के इन दोनों मानवों का समय आठ लाख वर्ष पूर्व से पाँच लाख वर्ष पूर्व माना जाता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जावा-मानव के समकालीन अथवा उससे कुछ प्राचीनतर मानव के अवशेष चीन में पेकिंग नगर से ३७ मील दूर **चोउ-कोउ-तिएन** नाम की गुफाओं से प्राप्त हुये हैं। इनकी खोज १९२९ ई० में डब्लू० सी० पेई नामक चीनी विद्वान् ने की। १९३७ ई० तक इस मानव के चालीस अस्थि-पिंजर प्राप्त हुये जिनमें चौदह कपाल भी थे। इन अस्थियों के मानव को **चीनी-मानव** (Sinanthropus) कहते हैं (चित्र १२)। यह मानव जावा-मानव के सदृश खड़ा हो कर चलता था

चित्र १२ : चीनी-मानव

इसलिए इसे **'पेकिंग का पिथेकेन्थ्रोपस्'** (Pithecanthropus Pekinensis) नामभी दिया गया है। पेकिंग-मानव बहुत सी बातों में जावा-मानव से मिलता-जुलता था, परन्तु उसका मस्तिष्क १०७५ घन सेन्टीमीटर था और वाणी का क्षेत्र जावा-मानव से अधिक विकसित था। उसकी अस्थियों के समीप बहुत से पशुओं की हड्डियाँ और अग्नि के चिह्न मिले हैं, जिनसे स्पष्ट है कि वह अग्नि के उपयोग से परिचित था। वह पाषाण उपकरणों का भी निश्चित रूप से प्रयोग करना जानता था।

यूरोप के मानवसम प्राणी—सन् १९५२ ई० तक कुछ विद्वानों का यह विश्वास था कि अफ्रीका और एशिया के समान यूरोप को भी मानव के विकास का आदि स्थल माना जा सकता है। इस विश्वास का आधार इंगलैण्ड के ससेक्स प्रदेश के **पिल्टडाउन** (Piltdown) स्थान से प्राप्त प्रस्तरित-मानव-अवशेष थे। १९१२ ई० में चार्ल्स डॉसन नामक व्यक्ति ने यह घोषित किया कि उसे उपर्युक्त स्थान से ऐसे प्राणी के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिसका समय प्रारम्भिक-प्लीस्टोसीन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

युग हो सकता है। परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि इस प्राणी के दाँत और मस्तिष्क-कोष आधुनिक मानव के समान थे परन्तु जबड़ा एप का था। अतः इसे एप और मानव के बीच की अवस्था का सूचक मान लिया गया। ब्रिटेन के नृवंशशास्त्रियों ने बड़े गर्व से इसे मानव विकास की 'लुप्त कड़ी' बताया और इसका नाम **'उषः मानव'** या **इयोन्थ्रोपस डॉसोनी** (Eoanthropus Dowsoni) अथवा **'पिल्टडाउन-मानव'** (Piltdown Man) रखा; परन्तु अमरीका तथा यूरोप के बहुत से विद्वानों ने कपाल और जबड़े के बेमेलपन को देखकर इस मानव की यथार्थता में सन्देह प्रकट किया। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया यह सन्देह विश्वास में बदलता गया। अब यह निश्चित प्रतीत होने लगा कि ऐसे प्राणी के कपाल में पूर्णमानव का मस्तिष्क नहीं हो सकता जिसका जबड़ा एप का हो। अन्त में १९५२ ई० में फ्लोरीन-परीक्षण के द्वारा यह सिद्ध हो गया कि पिल्टडाउन मानव वास्तविकता न होकर **वैज्ञानिक जालसाजी** है। इसका मस्तिष्क ५ लाख वर्ष पुराना न होकर केवल पचास सहस्र वर्ष पुराना है और जबड़ा भी अपेक्षाकृत नवीन है। किसी जालसाज ने रासायनिक प्रक्रिया द्वारा इसे प्राचीनसम बना दिया था।

'पिल्टडाउन-मानव' सम्बन्धी रहस्य खुल जाने के बाद प्राचीन मानव का यूरोप से प्राप्त होने वाला ऐसा कोई अस्थि-अवशेष नहीं बचता जिसको जावा-मानव या पेकिंग-मानव सदृश प्राचीन माना जा सके। इसलिए कम-से-कम अपने ज्ञान की वर्तमान अवस्था में हम यूरोप को मनुष्य का आदि-स्थल नहीं मान सकते। इस समय यूरोप से प्राप्त प्रस्तरित अस्थि-अवशेषों में प्राचीनतम **हीडलबर्ग-मानव** का जबड़ा है जिसको डॉ० शूटन सैक ने जर्मनी के हीडलबर्ग स्थान से १९०७ ई० में मौयर नाम की खान से प्राप्त किया। यह जबड़ा सम्भवतः द्वितीय हिमयुग अथवा द्वितीय अन्तर्हिमयुग के प्रारम्भ का है। इसका मानव एशिया के पिथेकेन्थ्रोपस-मानव से मिलता जुलता परन्तु कुछ अधिक विकसित और पूर्णमानव के निकटतर था (चित्र ४)।

यूरोप के 'प्रारम्भिक-पूर्णमानव'—हीडलबर्ग-मानव के पश्चात् यूरोप में उन मानवों का युग आता है जिनके अवशेष स्वैन्सकोम्बे, स्टीनहीम और फोंतेशेवाद स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। (अ) **स्वैन्सकोम्बे** (Swanscombe) टेम्स नदी के दक्षिण में केन्ट प्रदेश में एक छोटा सा नगर है। यहाँ पर मार्स्टन नामक विद्वान् को सन् १९३५ ई० में द्वितीय अन्तर्हिमयुग के स्तरों में एक मानव कपाल प्राप्त हुआ। यह कपाल किसी ऐसी स्त्री का था जिसकी आयु बीस वर्ष रही होगी। इसका मस्तिष्क-कोष १३२५ से १३५० घन सेन्टीमीटर रहा होगा, जितना आजकल की स्त्रियों का होता है। विद्वानों का यह मत है कि इस युवती के कपाल में ऐसी कोई बात नहीं जिससे इसे 'पूर्णमानव' (Homo sapiens) वर्ग की न माना जा सके। (आ) **स्टीनहीम-मानव**

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(Steinheim Man) के अवशेष जर्मनी में स्टूटगार्ड स्थान के समीप मिले हैं। यह द्वितीय अन्तर्हिमयुग के अन्तिम चरण से सम्बन्धित मालूम देते हैं। इन अवशेषों के मानव का मस्तिष्क-कोष केवल ११०० घन सेन्टीमीटर हैं, तथापि अन्य सभी बातों में इसे 'पूर्णमानव' कहा जा सकता है। (इ) **फोंतेशेवाद-मानव** (Fontechevade Man) के अवशेष १९४७ ई० में फ्रांस में इसी नाम की एक गुफा के निकट प्राप्त हुये हैं। इन तीनों स्थानों से प्राप्त मानव अवशेषों के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि ये तिथि की दृष्टि से मध्य-पूर्व-पाषाणकाल की नियण्डर्थल जाति (चित्र १९) से, जिसका अध्ययन हम बाद में करेंगे प्राचीनतर हैं परन्तु शारीरिक-संरचना की दृष्टि से यह नियण्डर्थल जाति की तुलना में आधुनिक मानव जातियों के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। अतः हम इनको **'प्रारम्भिक-पूर्णमानव'** (Early Homo sapiens) कह सकते हैं।

उपकरण

प्रारम्भिक हथियार—प्रारम्भिक प्लीस्टोसीन युग के अन्त अथवा द्वितीय हिमयुग के प्रारम्भ से ऐसे पाषाण उपकरण मिलने लगते हैं जिनके मानव द्वारा

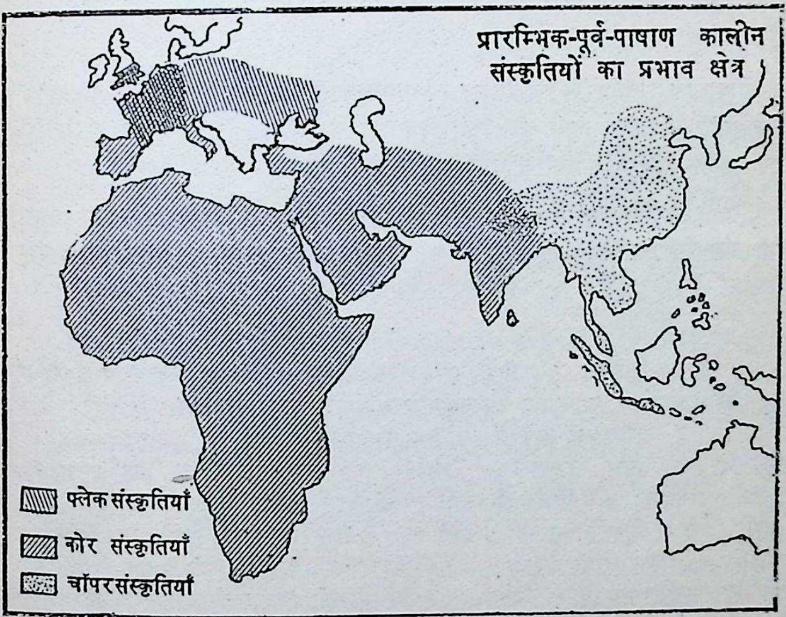

मानचित्र २

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निर्मित होने में सन्देह नहीं किया जा सकता। इन औज़ारों में प्राचीनतम स्थान **'मुष्टि छुरे'** (Coup-de-poing या Handaxe) को प्राप्त है। यह औजार सामने की ओर नोकीला और अगल-बगल धारदार होता था। पीछे की ओर इसे गोल रखा जाता था जिससे हाथ में पकड़ने में आसानी हो (चित्र १४)। प्रारम्भ में इसी एक औज़ार से मनुष्य हथौड़े, छुरे, कुल्हाड़ी, छेनी, बर्मे, भाले, आरी और खुर्चन-यन्त्र (Scraper) का काम ले लेता था। इसी से वह पशुओं का शिकार करता था, खाल को खुरचकर साफ करता था तथा कन्द-मूल खोदकर निकालता था। लेकिन ज्यों-ज्यों मनुष्य का अनुभव बढ़ता गया, वह विभिन्न प्रकार के कार्य करने के लिए विभिन्न प्रकार के औज़ार बनाने लगा। इन औज़ारों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—आन्तरिक या 'कोर' (Core) हथियार, फलक या 'फ्लेक' (Flake) हथियार तथा चॉपर (Chopper) हथियार (मानचित्र २)।

आन्तरिक उपकरण—आन्तरिक या कोर (Core) हथियार बनाने के लिए एक बड़े प्रस्तर-खण्ड से कुछ छिलकों या फलकों को इस प्रकार अलग कर दिया जाता था कि बीच का भाग, जिसे आन्तरिक या गूदा (Core) कहा जा सकता है एक हथियार के रूप में बच जाय। इस प्रकार के प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाण युगीन हथियार अफ्रीका, सीरिया, पेलेस्टाइन, पश्चिमी यूरोप (स्पेन, फ्रांस, और इंगलैण्ड) और दक्षिणी भारत में मिले हैं।

विकास की दृष्टि से प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल के 'कोर' हथियारों को **तीन 'संस्कृतियों'**[१] में बाँटा जाता है। सर्वप्रथम इनकी खोज और अध्ययन फ्रांस में हुआ इसलिए इनका नामकरण वहीं के स्थानों के नाम पर किया गया है।

(अ) **प्रारम्भिक-चैलियन संस्कृति** (Early Chellean Culture)—इसको यह नाम फ्रांस में पेरिस से ८ मील दूर स्थित चैलेस नामक स्थान से प्राप्त हथियारों के कारण दिया गया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इस संस्कृति का जन्म-स्थान

१. पुरातत्त्व में 'संस्कृति' (Culture) और 'उद्योग' (Industry) शब्दों का बहुधा प्रयोग किया जाता है। इस संदर्भ में 'संस्कृति' का अर्थ उस मानव-समूह के लिए होता है जिसके उपकरण, अस्त्र-शस्त्र और मृद्भाण्ड इत्यादि एक से हों। यह आवश्यक नहीं है कि वह मानव-समूह एक ही जाति का हो। संस्कृतियों के नाम बहुधा उन स्थानों पर रखे जाते हैं जहाँ वे उपकरण पहली बार मिलें; जैसे चैलेस के नाम पर चैलियन, हलफ के नाम पर हलफिअन इत्यादि। इसके विपरीत उद्योग (Industry) किसी एक स्थान पर एक मानव-समूह द्वारा निर्मित उपकरणों को कहते हैं। उदाहरण के लिए सेंट अचूल से प्राप्त उपकरण 'अचूलियन-उद्योग' कहलायेंगें और होक्स्ने से प्राप्त उपकरण 'होक्सने-उद्योग'; परन्तु इन दोनों स्थानों के उद्योग एक ही संस्कृति—अचूलियन—के अन्तर्गत आयेंगे।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भी फ्रांस ही है। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी उत्पत्ति मध्य अफ्रीका में हुई। कालान्तर में यह पश्चिमी यूरोप और दक्षिणी एशिया में फैली। इस संस्कृति के मुष्टिछुरे (Coup-de-poing) एक दम सादे हैं। इनके बनाने में कोई कौशल प्रकट नहीं किया गया है। इनमें बहुत से तो इयोलिथों के समान नैसर्गिक पाषाण-खण्ड मालूम होते हैं। इनकी तिथि द्वितीय हिमयुग के लगभग रखी जा सकती है। सम्भवतः इस समय पृथिवी पर पिथेकेन्थ्रोपस मानव विचरण कर रहा था।

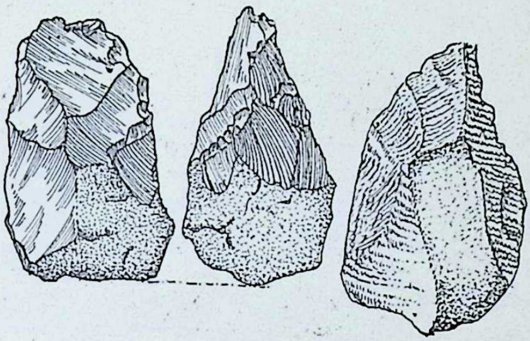

चित्र १३ : चैलियन-मुष्टिछुरे

(आ) **चैलियन या एब्बेविलियन संस्कृति** (Chellean or Abbevillian Culture) प्रारम्भिक-चैलियन युग के कुछ बाद में चैलियन या एब्बेविलियन संस्कृति का काल आता है। यह काल द्वितीय अन्तर्हिमयुग के प्रारम्भ तक चलता है। इस युग में पूर्व-चैलियन मुष्टिछुरे को दोनों तरफ से फलक उतार कर अधिक उपयोगी बनाया जाने लगा। इस समय पृथिवी पर सम्भवतः पिथेकेन्थ्रोपस-मानव के वंशज तथा हीडलबर्ग मानव विचरण कर रहे थे।

(इ) **अचूलियन संस्कृति** (Acheulian Culture)——इस संस्कृति का समय द्वितीय अन्तर्हिमयुग के मध्य से तृतीय अन्तर्हिमयुग के अन्त तक चलता है। इस काल के उपकरण पूर्वगामी युग के उपकरणों से अधिक अच्छे और नोकीले हैं। अब इन की आकृति बादाम से मिलती-जुलती हो जाती है। आन्तरिक से अलग हुए फलकों को भी अचूलियन मानव व्यर्थ नहीं जाने देते थे। वे उनके छोटे-छोटे उपकरण बना लेते थे। लेकिन फिर भी मुष्टिछुरा उनका प्रमुख औजार था। यह उपकरण यूरोप, ग्रीनलैण्ड, अमेरिका, कनाडा, मेक्सिको, पश्चिमी एशिया, भारत और चीन से प्राप्त होता है। इस युग में पृथिवी पर उन मानवों का आधिपत्य था जिनके अवशेष स्वैन्सकोम्बे, स्टीनहीम, तथा फोंतेशेवाद इत्यादि स्थानों पर प्राप्त होते हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

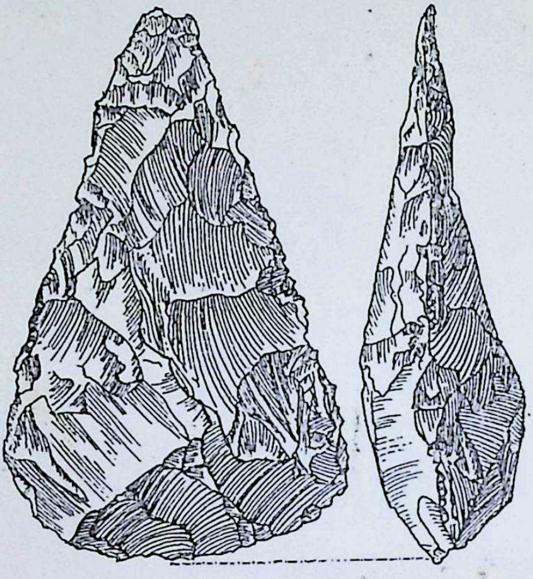

चित्र १४ : अचूलियन मुष्टिछुरा

फलक उपकरण—दूसरे प्रकार के हथियार फलक या फ्लेक हथियार कहलाते हैं। इनको बनाने में 'कोर' या आन्तरिक को छोड़ दिया जाता था और उसके स्थान पर उससे उतारे फलकों का प्रयोग किया जाता था। फ्लेक हथियार भी बहुत प्रकार के होते थे। ये विशेषतः यूरोप और उत्तरी यूरेशिया में मिलते हैं (मान चित्र २)। क्योंकि फलक 'कोर' से ही उतारे जाते थे, इससे स्पष्ट है कि फलक हथियारों का निर्माण आन्तरिक हथियारों के साथ बहुत प्राचीनकाल में ही प्रारम्भ हो चुका होगा। विकास की दृष्टि से फलक हथियारों को निम्नलिखित संस्कृतियों में बाँटा जा सकता है :—

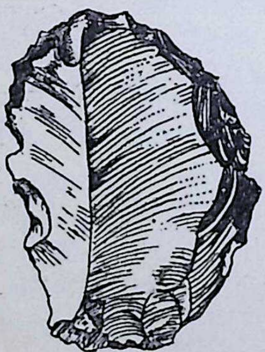

चित्र १५ : क्लेक्टोनियन फलक

(अ) क्लेक्टोनियन संस्कृति (Clactonian Culture)—यूरोप में इस संस्कृति का इतिहास द्वितीय हिमयुग से प्रारम्भ होता है और द्वितीय अन्तर्हिमयुग में अचूलियन संस्कृति के पूर्वार्द्ध तक चलता है। यद्यपि स्वैन्सकोम्बे जैसे स्थानों पर प्राप्त अवशेषों में केवल क्लेक्टोनियन हथियार ही मिलते हैं तथापि अचूलियन संस्कृति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्लीस्टोसीनयुगीन पाषाण संस्कृतियों और मानव जातियों का तिथिक्रम

यूरोप का भूगर्भीय समयखण्ड				पूर्व-पाषाणकालीन संस्कृतियाँ			मानव और उसके पूर्वज	अफ्रीका का भूगर्भीय समयखण्ड	
तिथि सहस्र वर्षों में	काल	हिमयुग क्रम	आल्प्स् का तिथिक्रम	यूरोप	एशिया	अफ्रीका	मानव जातियाँ	अफ्रीका का वर्षायुगक्रम	तिथि सहस्र वर्षों में
१०	होलोसीन	हिमोत्तर-युग	हिमोत्तर-युग	धातु काल, नव-पाषाणकाल, मध्य-पाषाणकाल	काल, पाषाणकाल		पूर्णमानव जातियाँ	वर्षाक्रमोत्तरयुग	१०
५०?	परवर्ती प्लीस्टोसीन	चतुर्थ हिमयुग	वुर्म ३, वुर्म २, वुर्म १	मैग्डेलेनियन, ग्रवेशियन, सौल्युट्रियन, ऑरिन्येशियन, शेतलपेरोनियन, मूस्टेरियन	ऑरिन्येशियन, लेवालुआजो मूस्टेरियन, विकसित सोहन	केप्सियन, अतेरियन, मध्य-पाषाणकाल, लेवालुआजो मूस्टेरियन	नियण्डर्थल मानव	गम्बलियन	५०?
१००?		तृतीय अन्तर्हिमयुग		अचूलियन, लेवालुआजियन	ब्लेड उपकरण विधि, सोहन	लेवालुआजियन		तृतीय अन्तर्वर्षायुग	१००?
२००?	मध्य प्लीस्टोसीन	तृतीय हिमयुग	रिस्स २, रिस्स १	अचूलियन, लेवालुआजियन	अचूलियन, परवर्ती सोहन		फोंतेशेवाद मानव	कञ्जेरान	२००?
३००?		द्वितीय अन्तर्हिमयुग		अचूलियन, क्लेक्टोनियन, चैलियन	अचूलियन, प्रारम्भिक सोहन, पतजितनियन	अचूलियन, चैलियन	स्टीनहीम मानव	द्वितीय अन्तर्वर्षायुग	३००?
	प्रारम्भिक प्लीस्टोसीन	द्वितीय हिमयुग	मिन्डेल २, मिन्डेल १	चैलियन, क्लेक्टोनियन, एब्बेविलियन	चोउकोउतिएनियन, प्राक् सोहन, एब्बेविलियन	ओल्डवान, एब्बेविलियन	हीडलबर्ग मानव, जावा मानव, पेकिंग मानव	कमसियान	
५००?		प्रथम अन्तर्हिमयुग		प्राक् चैलियन		काफुआन		प्रथम अन्तर्वर्षायुग	५००?
६००?		प्रथम हिमयुग	गुञ्ज २, गुञ्ज १				आस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्	कंगेरान	६००?
१०००?		प्राक्-हिमयुग	प्राक्-हिमयुग					प्राक्-वर्षायुग	१०००?
	प्लीयोसीन काल								

तालिका

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के निर्माताओं के पश्चिमी यूरोप में वस जाने पर दोनों संस्कृतियाँ परस्पर मिल जाती हैं। फिर भी पूर्वी और मध्य यूरोप में क्लेक्टोनियन संस्कृति का प्रभुत्व बना रहता है (चित्र १५)।

(आ) लेवालुआजियन संस्कृति (Levalloisian Culture)—इस संस्कृति में औज़ार (चित्र १६) बनाने के पहले पाषाण-खण्ड में औज़ार की आकृति को खोद लिया जाता था और फिर उसे तोड़ कर अलग कर दिया जाता था। इस विधि का आविष्कार सम्भवतः कई प्रदेशों में स्वतन्त्र रूप से हुआ। इसका काल तृतीय हिमयुग के प्रारम्भ से तृतीय अन्तर्हिमयुग के अन्त तक माना जाता है।

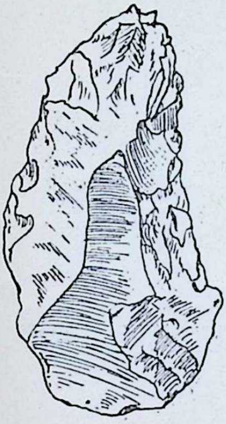

चित्र १६ : लेवालुआजियनफलक

चॉपर उपकरण—जिस समय यूरोप, अफ्रीका और एशिया के कुछ भागों में कोर और फ्लेक संस्कृतियाँ फलफूल रही थीं, उत्तर-पश्चिमी भारत, दक्षिण-पूर्वी तथा पूर्वी एशिया में एक तीसरे प्रकार की संस्कृति लोकप्रिय थी (मानचित्र २), इसे चॉपर (Chopper) संस्कृति कहते हैं। चॉपर हथियार मुष्टि-छुरे से मिलते-जुलते होने पर भी कुछ भिन्न होते थे। इनमें साधारणतः एक ओर ही धार बनाई जाती थी। अधिकांश चॉपर फलकों से बनाए जाते थे। कभी-कभी कोर का प्रयोग भी किया जाता था। यह हथियार विशेषतः उत्तर-पश्चिम भारत की सोअन, (चित्र १७) बर्मा की अन्नाथियन, जावा की पतजित-नियन (जावा-मानव की समकालीन ?) मलाया की तम्पनियन और चीन की चोउ-कोउ-तियनियन संस्कृतियों में मिलता है। अफ्रीका की प्राक्-चैलियन युग की स्टैलेन-बाश (Stellenboselh) प्रारम्भिक आल्डोवान (Early Oldowan) तथा काफुआन (Kafuan) संस्कृतियों में भी ये उपकरण मिलते हैं।

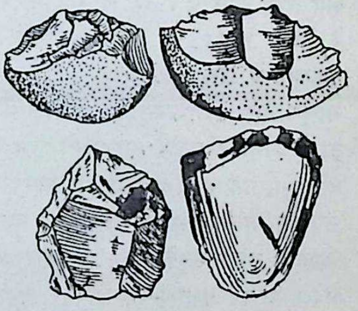

चित्र १७ : चॉपर उपकरण

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाण काल में तीन प्रमुख सांस्कृतिक धाराएँ समानान्तर रूप से प्रवाहित हो रही थीं। एक चैलियन-अचलियन धारा जिसमें आन्तरिक उपकरणों की प्रधानता थी, दूसरी क्लेक्टोनियन-लेवालुआजियन, जिसमें फलक उपकरणों की प्रधानता थी और तीसरी सोअन-अन्ना-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

थियन-पतजितनियन-चोउ-कोऊ-तिनियन धारा, जिसमें विशेषतः चॉपर उपकरण बनाये जाते थे। फलक उपकरण हिम जलवायु में अधिक उपयोगी सिद्ध होते थे।

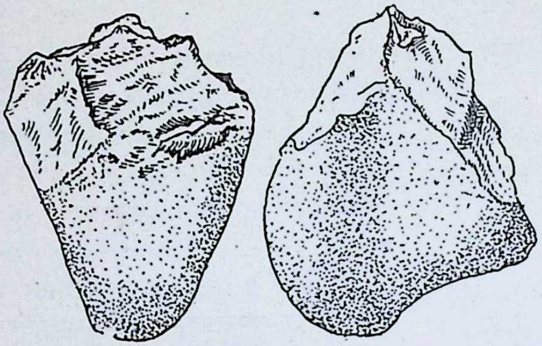

चित्र १८ : ओल्डोवान-उपकरण

इसलिए यूरोप में अन्तर्हिमयुगों में आन्तरिक उपकरणों की लोकप्रियता अधिक हो जाती थी और हिमयुगों में फलक उपकरणों की।

दैनिक-जीवन

प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकालीन मानव के जीवन पर प्रकाश डालने वाले बहुत कम तथ्य ज्ञात हैं। यह लगभग निश्चित है कि इस काल का मानव खुले आकाश के नीचे रहता था और नदियों तथा झीलों के किनारे विचरण करता था। **गुफाओं** से उसे कोई मोह नहीं था। केवल पेकिंग-मानव इस विषय में अपवाद मालूम देता है। सम्भवतः आग से भी उसका परिचय नहीं था। अफ्रीका में मनुष्य द्वारा **अग्नि** के प्रयोग का प्राचीनतम साक्ष्य अचूलियन युग के अन्त का है। लेकिन पेकिंग-मानव इस क्षेत्र में भी अपवाद है। वह निश्चित रूप से अग्नि के कुछ उपयोग जानता था। अचूलियन मानव की आजीविका का प्रमुख स्रोत सम्भवतः **शिकार** था। उसके मुख्य हथियार लकड़ी की साधारण बर्छियाँ थीं। किसी-किसी प्रदेश में बड़े पशुओं का शिकार करने के लिए गड्ढे भी खोदे जाते थे, जिनमें पशु गिरकर फँस जाते थे। इस काल के मानवों द्वारा शिकार किये गये पशुओं की अस्थियाँ इटली और स्पेन में प्रचुरता से प्राप्त होती हैं। इनसे ज्ञात होता है कि वे जंगली वृषभ, अश्व और हाथी के शिकार में विशेष रूप से रुचि लेते थे।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

५

मध्य-पूर्व-पाषाणकाल

नियण्डर्थल मानव

मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में यूरोप में नियण्डर्थल जाति का आधिपत्य स्थापित हो जाता है। नियण्डर्थल-मानव के अवशेष सर्वप्रथम १८४८ ई० में जिब्राल्टर की एक चट्टान के नीचे मिले। उस समय इनकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। तत्पश्चात् १८५६ ई० में जर्मनी के डुसेलडोर्फ प्रदेश के नियण्डर्थल स्थान पर एक अस्थि-पिंजर के कुछ अंश मिले। इस स्थान के नाम पर इन अस्थियों के मानव को **नियण्डर्थल** कहा गया (चित्र १९)। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप के बेल्जियम, फ्रांस, स्पेन, इटली, यूगोस्लाविया और क्रीमिया इत्यादि देशों से इस मानव के अनेक अस्थि-पिंजर खोज निकाले गये। इनसे स्पष्ट हो गया कि नियण्डर्थल मानव का मानव सभ्यता के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

चित्र १९ : नियण्डर्थल-मानव

नियण्डर्थल मानव की **शरीर-संरचना** आधुनिक 'पूर्णमानव' से बहुत कुछ मिलती-जुलती होने पर भी कुछ बातों में भिन्न थी। यह मानव कद में छोटा—केवल ५ फुट से ५ फुट ४ इंच तक—होता था। उसका सिर बड़ा, नाक चौड़ी परन्तु नोकीली, कन्धे चौड़े और माथा पीछे की ओर ढलका हुआ होता था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उसका अंगूठा मनुष्य के अँगूठे के समान लचीला नहीं होता था। वह न तो गर्दन सीधी करके खड़ा हो सकता था और न सत्वर गति से चल सकता था। उसका मस्तिष्क-कोष 'पूर्ण मानव' के मस्तिष्क-कोष से कुछ बड़ा (१४५० घन सेन्टीमीटर) परन्तु निम्नकोटि का था। उसके मस्तिष्क की देखने और छूने से सम्बन्धित शक्तियाँ कुछ कमजोर थीं। वह सम्भवतः बोल सकता था, परन्तु भाषा का विकास नहीं कर पाया था। यद्यपि एशले मोंटेगु जैसे नृवंशशास्त्रियों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि नियण्डर्थल मानव पूर्ण मानवों से मिलता-जुलता था तथापि अधिकांश विद्वान् यह विश्वास करते हैं कि नियण्डर्थलों में उपर्युक्त शारीरिक दोष थे।

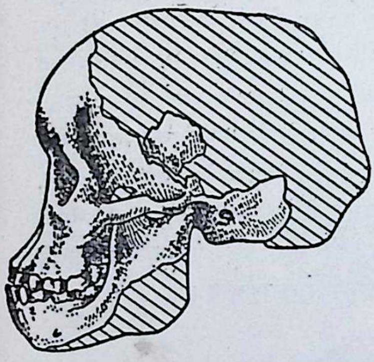

१—ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस् का कपाल

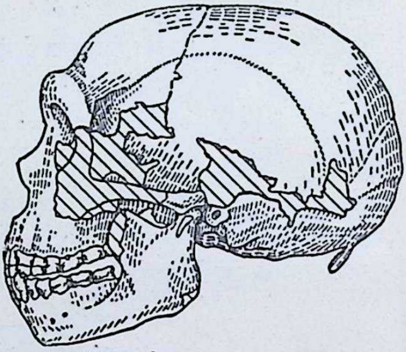

२—नियण्डर्थल-मानव का कपाल

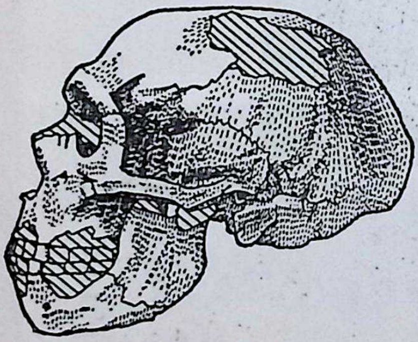

३—कार्मेल पर्वत से प्राप्त नियण्डर्थलसम मानव का कपाल

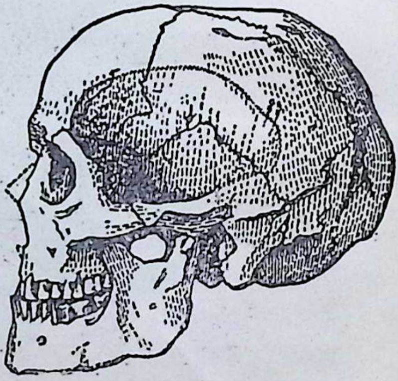

४—क्रोमान्यों-मानव का कपाल

चित्र २०

नियण्डर्थलों का मानव-परिवार में स्थान—नियण्डर्थल-मानव का मानव-परिवार में क्या स्थान है, इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं है। अब से कुछ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वर्ष पूर्व तक विद्वानों की यह धारणा थी कि नियण्डर्थल जाति 'मानव' वर्ग (Homo) की होने पर भी 'पूर्णमानव' वर्ग (Homo Sapiens) से सम्बन्धित नहीं है। उनके अनुसार यह एक अर्द्ध-मानव जाति थी जिसको परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल के 'पूर्ण-मानवों' ने पराजित करके यूरोप पर अधिकार स्थापित किया। लेकिन हम देख चुके हैं कि अब यूरोप में ही प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल के ऐसे प्रस्तरित अवशेष स्वैन्सकोम्वे, स्टीनहीम और फोंतेशेवाद इत्यादि स्थानों से प्राप्त हो गये हैं जिनको 'पूर्णमानवों' के अवशेष न मानने का कोई कारण नहीं है। इसलिए अब यह कह सकना लगभग असम्भव हो गया है कि 'पूर्णमानव' जाति का यूरोप में आगमन नियण्डर्थल जाति के संहारक के रूप में हुआ। अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि हिमयुगों के प्रारम्भिक काल में 'पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्ट्स' मानवों से मिलते-जुलते मानव यूरोप में आकर बस गये थे। इसका प्रमाण हीडलबर्ग-मानव के अवशेष हैं। इन्हीं मानवों से प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल में 'पूर्ण-मानवों' का विकास हुआ। लेकिन मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में, जब यूरोप में चौथी बार भयानक हिमपात हुआ, 'पूर्णमानवों' की एक शाखा में, जिसे हम नियण्डर्थल कहते हैं, अकेले पड़ जाने के कारण कुछ शारीरिक परिवर्तन हो गये, जिनके कारण यह जाति 'पूर्णमानवों' से कुछ भिन्न दिखाई देने लगी। इस दृष्टि से देखने पर नियण्डर्थल जाति मूलतः 'पूर्णमानव-परिवार' से सम्बन्धित मानी जाएगी।

उपकरण

मूस्टेरियन-उपकरण—नियण्डर्थल जाति के पाषाण हथियार मूस्टेरियन-संस्कृति (Mousterian Culture) के अन्तर्गत आते हैं (चित्र २१)। ये हथियार फ्रांस के

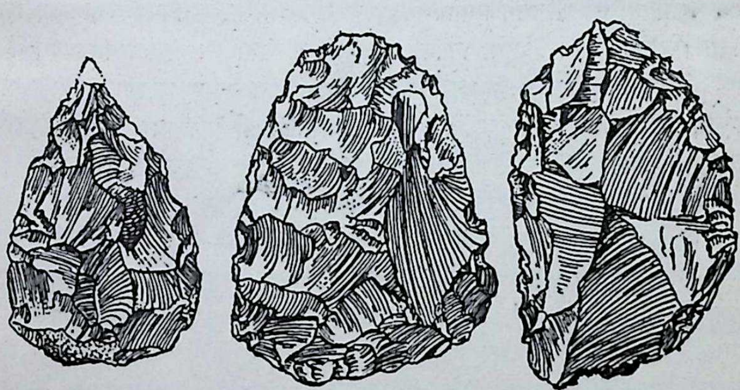

चित्र २१ : मूस्टेरियन-उपकरण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ल-मूस्टियर स्थान में प्रचुर मात्रा में पाये गये हैं इसलिए इन्हें 'मूस्टेरियन' नाम दिया गया है। मूस्टेरियन हथियार फ्रान्स के ग्रतिरिक्त यूरोप के ग्रन्य बहुत से देशों, पश्चिमी एशिया ग्रौर उत्तरी ग्रफ्रीका में भी मिले हैं। ये **मुख्यतः फलक हथियार** हैं। मुष्टिछुरे का, पुराने ढंग का होने के कारण, बहुत कम प्रयोग हुग्रा है। मूस्टेरियन हथियारों का विकास विशेषतः क्लेक्टोनियन हथियारों से हुग्रा पर इन पर ग्रचूलियन ग्रौर लेवालुग्राजियन परम्पराग्रों का प्रभाव भी सर्वथा स्पष्ट है। ये प्राचीन फलक हथियारों से ग्रधिक हल्के, तेज़ ग्रौर सुन्दर हैं। ये कई शताब्दियों के ग्रनुभवों का परिणाम मालूम होते हैं। इन उपकरणों में पार्श्व-खुरचन-यन्त्र (Side Scraper), पत्थर का रन्दा, ग्रारा, चाकू, सुग्रा, भाले की नोक,तथा बर्छी की नोक इत्यादि सम्मिलित हैं। नियण्डर्थल-मानव **अस्थियों के नैसर्गिक टुकड़ों** को भी हथियार के रूप में प्रयुक्त करते थे। परन्तु उन्हें तराशकर 'मानव निर्मित हथियार' का रूप देना नहीं जानते थे।

नियण्डर्थल-संस्कृति

नियण्डर्थल युग की तिथि—इस संस्कृति का काल तृतीय ग्रन्तर्हिमयुग के ग्रन्तिम चरण से प्रारम्भ होता है। उस समय यूरोप का जलवायु उष्ण था इसलिए उस काल के नियण्डर्थलों का जीवन ग्रचूलियनों के जीवन से मिलता-जुलता था। लेकिन **चतुर्थ हिमयुग में**, जब यूरोप में भयंकर शीत पड़ रहा था, नियण्डर्थलों का जीवन एकदम बदल जाता है। यही काल नियण्डर्थल संस्कृति का प्रमुख काल है।

गुफाओं का प्रयोग और अग्नि पर नियन्त्रण—चतुर्थ हिमयुग के शीत से बचने के लिए नियण्डर्थलों ने गुफाग्रों में रहना प्रारम्भ किया। उनकी पूर्वगामी जितनी मानव जातियों का ग्रध्ययन हमने किया है उनमें पेकिंग-मानव को छोड़कर ग्रन्य किसी के गुफाग्रों में रहने का प्रमाण नहीं मिलता। लेकिन नियण्डर्थलों ने जहाँ भी सम्भव हो सका, गुफाग्रों को ग्रपना निवास स्थान बनाया। उनके पास जलपात्र नहीं थे इसलिये उन्होंने ऐसी गुफाग्रों को ही ग्रपनाया जो झीलों ग्रौर सरिताग्रों के पास पड़ती थीं ग्रौर जहाँ पाषाण खण्ड भी सुविधा से मिल जाते थे। गुफाग्रों में रहने की परम्परा परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल में भी चलती रही (पृ० ५२), इसलिये नियण्डर्थल युग को कभी-कभी **प्रारम्भिक-गुहा-युग** ग्रौर परवर्ती पूर्व-पाषाण काल को परवर्ती गुहा-युग भी कहा जाता है। लेकिन नियण्डर्थल गुफाग्रों पर ग्रनायास ही ग्रधिकार न कर सके। इस समय मैमथ, भालू ग्रौर गैंडे जैसे भयंकर पशु भी शीत से बचने के लिए गुफाग्रों पर ग्रधिकार करने का प्रयास कर रहे थे। उनको गुफाग्रों से दूर रखने में नियण्डर्थलों को **अग्नि** से बहुत सहायता मिली। नियण्डर्थल निश्चित रूप से ग्रग्नि से परिचित थे लेकिन वे स्वयं ग्राग जलाना

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जानते थे अथवा नहीं यह कहना कठिन है। अधिकांश विद्वानों का विचार है कि वे चकमक पत्थर से आग जलाना जानते थे। अग्नि पर नियन्त्रण कर लेना नियण्डर्थलों की बहुत बड़ी सफलता थी। आग से जंगली पशु डरते थे इसलिये गुफाओं के द्वार पर इसे प्रज्जवलित रखकर उन्हें दूर रखा जा सकता था। वे अपने आश्रय स्थान में निर्भर होकर सो सकते थे। इसकी सहायता से वे चतुर्थ हिमयुग के भयंकर शीत से बच सकते थे और अंधेरे स्थानों को प्रकाशित कर सकते थे। अग्नि की सहायता से उनका भोजन अधिक सुस्वाद होने लगा। सैकड़ों पदार्थ जो पकाये बिना नहीं खाये जा सकते थे, अब उनके भोजन में सम्मिलित हो गये। इसके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना चाहिये कि अग्नि पर ही भविष्य में सभ्यता की प्रगति निर्भर थी। अग्नि पर नियन्त्रण किये बिना न तो मनुष्य धातुओं को पिघला सकता था और न उनसे उपकरण बना सकता था। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि नियण्डर्थलों ने अग्नि पर नियन्त्रण स्थापित करके मानव-सभ्यता की प्रगति में महत्त्वपूर्ण योग दिया।

भोजन और शिकार—नियण्डर्थल-मानव पूर्णरूपेण **प्रकृति-जीवी** थे। वे अभी तक कृषि से अपरिचित थे और पशुपालन करके अतिरिक्त खाद्य-सामग्री, जैसे दूध और माँस इत्यादि का 'उत्पादन' करना नहीं जानते थे। उनका **भोजन** या तो जंगली फल थे जिनको वे तोड़कर एकत्र कर सकते थे, अथवा वे पशु थे जिनका वे अकेले या सामूहिक रूप से शिकार करते थे। विभिन्न प्रकार के जंगली बेर, करोंदे, शाक, फल, अण्डे, मधु, केंचुएँ, कीड़े-मकोड़े तथा मेंढक इत्यादि उनका साधारण भोजन थे। नदियों और तालाबों से, सम्भवतः हाथ से, वे मछली पकड़ लेते थे। समुद्र के किनारे उन्हें घोंघे और समुद्री घास खाने को मिल जाती थी। छोटी-छोटी चिड़ियों को सम्भवतः वे पत्थर मारकर गिरा लेते थे। मांसाहार के लिए वे मुख्यतः छोटे-छोटे पशुओं पर दृष्टि रखते थे। उनके नरभक्षी होने के भी कुछ संकेत मिलते हैं। बड़े पशुओं का **शिकार** वे सम्मिलित रूप से ही करते थे क्योंकि उनका अकेले शिकार करने में स्वयं शिकार हो जाने का भय रहता था। यह युग रीछ, गैंडे और मैमथ आदि भयंकर पशुओं का था। नियण्डर्थलों के पास केवल पाषाण के हथियार थे, इसलिये सम्मिलित रूप से घेरे बिना उनका शिकार नहीं किया जा सकता था। जब कोई विशालकाय पशु बीमार या घायल अवस्था में मिल जाता था तो वे उसे पानी या बर्फ में फँसाकर आसानी से मार डालते थे। मृत पशुओं के लघु अंङ्गों की अस्थियाँ नियण्डर्थलों की गुफाओं में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं, परन्तु पसली और रीढ़ की हड्डियाँ बहुत कम प्राप्य हैं। इससे ज्ञात होता है कि वे विशालकाय पशुओं के धड़ को वहीं खा लेते थे जहाँ उनका शिकार करते थे और शेष भाग को काटकर गुफाओं में ले आते थे।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शिकार में मारे गये पशुओं से नियण्डर्थलों को माँस के साथ **खाल** भी मिल जाती थी। खाल के आन्तरिक भाग को वे छीलकर ठीक कर लेते थे। इसके लिए वे अपने पाषाण औज़ारों का प्रयोग करते थे। साफ करने के बाद उसे धूप में सुखाकर ओढ़ने, बिछाने और सम्भवतः पहिनने के काम में लाते थे।

सामाजिक जीवन—नियण्डर्थल मानव विशालकाय पशुओं का शिकार करता था, इससे स्पष्ट है कि वह **समूहों** में रहता होगा। अगर आधुनिक आदिम जातियों के सामाजिक संगठन के आधार पर कुछ कल्पना की जाय तो कहा जा सकता है कि प्रत्येक समूह का एक **मुखिया** होता था। समूह में अधिक संख्या स्त्रियों और बच्चों की होती थी। जो पुरुष मुखिया की आज्ञा नहीं मानते थे उनको समूह से निकाल दिया जाता था। समूह के पुरुष-सदस्य दिन भर भोजन जुटाते थे और रात में एक स्थान पर इकट्ठे हो जाते थे जिससे बनैले पशुओं से अपनी रक्षा कर सकें। स्त्रियाँ और बच्चे दिन भर पाषाण-खण्ड एकत्र करते थे। रात में समूह का मुखिया और अन्य पुरुष मिलकर हथियार बनाते थे और बच्चे उनके पास बैठकर यह कला सीखते थे। जब समूह का कोई लड़का व्यस्क हो जाता था तो वह मुखिया के पद को छीनने का प्रयास करता था। अगर मुखिया इस संघर्ष में जीतता था तो वह उस युवक को समूह से निकाल देता था और यदि युवक जीतता था तो वह मुखिया बन जाता था और समूह के सब सदस्यों पर उसका अधिकार हो जाता था।

मृतक-संस्कार—अपने अस्तित्व के अन्तिम चरण में नियण्डर्थलों ने अपने मृतकों को कुछ आदर, और सम्मान के साथ दफनाना प्रारम्भ कर दिया था। वे उनको विशेष रूप से खोदी गई **समाधियों** में गाड़ते थे। बहुधा ये समाधियाँ रहने की गुफाओं में उस स्थान के समीप बनाई जाती थीं जहाँ वे आग जलाते थे। सम्भवतः वे इस तथ्य से परिचित थे कि जीवित शरीर में उष्णता तथा मृत शरीर में ठण्डक होती है। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला होगा कि मृत शरीर को अग्नि के समीप दफनाने से व्यक्ति पुनर्जीवित हो सकता है। वे अपने मृतकों को विशेष मुद्राओं में लिटाते थे और उनके साथ औज़ार और खाद्य-सामग्री रख देते थे। एक स्थान पर एक नियण्डर्थल युवक दाहिनी कलाई पर सिर रखकर सोने की मुद्रा में दफनाया गया मिलता है। उसकी कलाई पाषाण-हथियारों के ढेर पर, जिनका तकिया सा बना है, रखी हुई है। उसके सिर के पास एक पाषाण की कुल्हाड़ी और आसपास बहुत सी अस्थियाँ बिखरी हुई हैं। सम्भवतः उनका विचार था कि **मरने के बाद भी** व्यक्ति का अस्तित्व किसी-न-किसी रूप में बना रहता है और उस समय भी उसे इस जीवन में प्रयुक्त होने वाली खाद्य-सामग्री और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

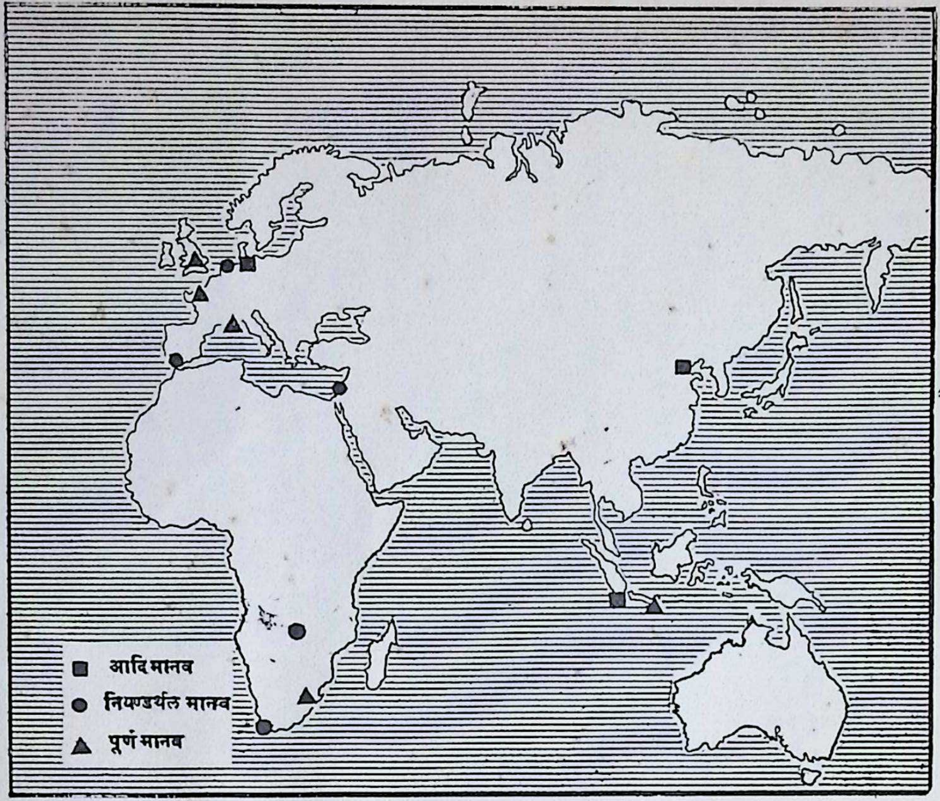

मानचित्र ३

आदि मानव प्रस्तरित-अवशेषों के प्राप्ति-स्थल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हथियारों की आवश्यकता पड़ती है। इससे स्पष्ट है कि वर्बर निण्यडर्थल ने मृत्यु और जीवन की समस्या पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था।

अन्त

नियण्डर्थलों का अन्त—नियण्डर्थल जाति का अन्त अब से तीस-पैंतीस सहस्र वर्ष पूर्व उस जाति ने किया जिसे नृवंशशास्त्री 'पूर्णमानव' या 'मेधावी मानव' (True man अथवा Homo sapiens) कहते हैं। हम पहले ही देख चुके हैं कि सम्भवतः 'पूर्णमानव' जाति का उद्भव यूरोप में प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल में ही हो चुका था और स्वयं नियण्डर्थल जाति मूलतः 'पूर्णमानव' जाति की ही एक शाखा थी। इस तथ्य के प्रकाश में आने के पूर्व बहुत से विद्वान् यह मानते थे कि 'पूर्ण-मानव' जाति और नियण्डर्थल जाति में शारीरिक और मानसिक भिन्नताएँ इतनी अधिक थीं कि उनका एक दूसरे के सम्पर्क में आना असम्भव था। 'पूर्ण-मानव' सम्भवतः नियण्डर्थलों को अपने से भिन्न मानते थे और उनके छोटे क़द, बेढंगी चाल, सख्त गर्दन और कुरूप आकृति के कारण उनसे घृणा करते थे। अतएव दोनों जातियों में रक्त मिश्रण नहीं हो पाया और नियण्डर्थल जाति युद्ध में पराजित हो जाने के बाद स्वयं ही लुप्त हो गई। लेकिन पिछले कुछ दशकों में पेलेस्टाइन और मध्य एशिया में ऐसे मानवों के अस्थि-अवशेष प्राप्त हुये हैं जो निश्चित रूप से नियण्डर्थल और 'पूर्णमानव' जाति के बीच की अवस्था का सूचक हैं। पेलेस्टाइन में **गैलिली समुद्र के पास** एक गुफा में प्राप्त कपाल और **कार्मेल पर्वत की** उपत्यका में तीन गुफाओं में प्राप्त दस अस्थि-पिंजर निश्चित रूप से **नियण्डर्थल** के बजाय नियण्डर्थलसम (Neanderthaloid) प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार १९३८ में रूस के उजवेकिस्तान गणतन्त्र में एक नियण्डर्थलसम बालक के अवशेष प्राप्त हुये। ये अवशेष सम्मिलित रूप से **'शुल-उपशाखा'** के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें नियण्डर्थलों और 'पूर्णमानवों' की शारीरिक विशेषताएँ मिले-जुले रूप में मिलती हैं। इससे स्पष्ट है कि नियण्डर्थल जाति और 'पूर्णमानवों' के रक्त मिश्रण की सम्भावना को एक दम विस्मृत नहीं किया जा सकता।

नियण्डर्थल संस्कृति के अवशेष--तस्मानिया—नियण्डर्थल जाति का रक्त पूर्ण-मानवों में हो या न हो, कम-से-कम उसकी संस्कृति अभी तक एकदम विलुप्त नहीं हो पायी है। आधुनिक काल में जब डच व्यापारियों ने तस्मानिया की खोज की तो उन्हें वहाँ एक ऐसी जाति मिली जिसका रहन-सहन नियण्डर्थलों के रहन-सहन से मिलता-जुलता था। यह जाति **शारीरिक-संरचना** की दृष्टि से 'पूर्णमानव' वर्ग की थी। यह तथ्य इस वात का एक और प्रमाण है कि नियण्डर्थल जाति मूलतः 'पूर्णमानव' वर्ग की सदस्य थी। केवल मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में यूरोप

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

की विशेष परिस्थितियों के कारण उसकी शरीर-संरचना में 'दोष' उत्पन्न हो गये थे। इसके विपरीत तस्मानियन जाति की शरीर-संरचना वैसी ही बनी रही। इतना ही नहीं किसी विशेष कारणवश शेष विश्व से पृथक हो जाने और सभ्य जातियों के प्रभाव से मुक्त रहने के परिणामस्वरूप वह आधुनिक काल तक उसी आदिम अवस्था में पड़ी रही जिसमें वह मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में थी।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

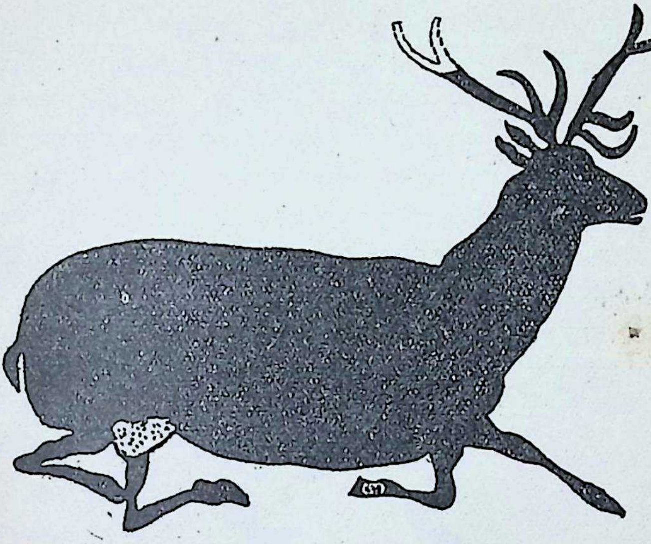

६

परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल

'पूर्णमानव' जातियाँ

हम देख चुके हैं कि चतुर्थ हिमयुग में पश्चिमी यूरोप पर नियण्डर्थल जाति का आधिपत्य था। अब से लगभग ३५,००० वर्ष पूर्व यह जाति सहसा विलुप्त होने लगती है और उसका स्थान ऐसी मानव जातियाँ लेने लगती हैं जिनकी शरीर-संरचना पूर्णरूपेण आधुनिक मनुष्य जातियों की शरीर-संरचना के समान थी। उनके मस्तिष्क-कोष, दाँत, ठोड़ी, गर्दन, नाक, पैर और हाथ की बनावट ऐसी थी जैसी आधुनिक मानवों की होती है। नृवंशशास्त्री इन मानव जातियों को 'पूर्ण-मानव' या 'मेधावी मानव' (Homo sapiens अथवा True man) वर्ग में रखते हैं। इस जाति के प्रादुर्भाव के पश्चात् मानव का शारीरिक विकास रुक जाता है परन्तु सांस्कृतिक विकास चलता रहता है।

इस पृष्ठ के ऊपर पूर्वी स्पेन में क्रीटास (Cretas) स्थान में स्थित एक गुफा-आश्रय (Rock-Shelter) से प्राप्त परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल का बारहसिंगे का एक चित्र दिया गया है। चित्रकार को बारहसिंगे के यथार्थ अङ्कन में पूर्ण-सफलता मिली है (पृ० ५६)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

'पूर्णमानव' जाति का आदिस्थल—'पूर्णमानव' जाति परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल में यूरोप, उत्तरी और पूर्वी अफ्रीका तथा एशिया के विभिन्न प्रदेशों में एक साथ दिखाई देती है, इसलिये यह कहना कठिन है कि इसका सर्वप्रथम आविर्भाव कहाँ हुआ। अब से कुछ वर्ष पूर्व तक कुछ अँग्रेज लेखकों का यह मत था कि 'पूर्णमानव' जाति का विकास 'पिल्टडाउन-मानव' से हुआ, लेकिन 'पिल्टडाउन-मानव' की यथार्थता के संदिग्ध हो जाने के बाद इस मत को मानने का प्रश्न ही नहीं उठता (पृ० ३०)। कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि जिस समय नियण्डर्थल जाति यूरोप में मध्य-पूर्व-पाषाणकालीन जीवन व्यतीत कर रही थी, उस समय 'पूर्णमानव' जाति अपने आदि-स्थल में लगभग उसी प्रकार की अवस्था से गुजर रही थी। यह आदि-स्थल सम्भवतः एशिया अथवा अफ्रीका में था जहाँ से यह उत्तरी अफ्रीका होते हुए यूरोप आई। सम्भवतः उस समय मेडीट्रेनियन समुद्र का अधिकांश भाग शुष्क होने के कारण उत्तरी अफ्रीका और यूरोप परस्पर जुड़े हुये थे

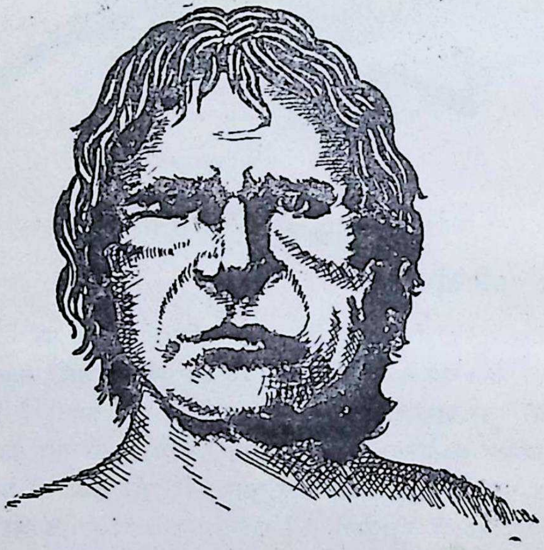

चित्र २३ : क्रोमान्यों-मानव

(मानचित्र १); इसलिए उसे मेडीट्रेनियन प्रदेश पार करके यूरोप आने में कोई कठिनाई नहीं हुई। कुछ अन्य विचारकों ने मेडीट्रेनियन समुद्र के उस शुष्क प्रदेश को ही, जो अब जलमग्न है, पूर्णमानवों का आदि-स्थल माना है। कुछ नृवंश-शास्त्री नियण्डर्थलों के ही विकसित रूप में 'पूर्णमानव' बन जाने की सम्भावना पर बल देते हैं। लेकिन हम देख चुके हैं **'पूर्णमानव' जातियों का उदय** सम्भवत;

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल में ही हो चुका था और स्वयं नियण्डर्थल जाति भी 'पूर्णमानव' जाति की एक शाखा थी। केवल उसकी शरीर-संरचना का कुछ विशेष परिस्थितियों में रहने के कारण भिन्न प्रकार से विकास हो गया था (पृ० ३६)। इसका एक प्रमाण स्वैन्सकोम्बे, स्टीनहीम और फोंतेशेवाद स्थानों से प्राप्त होने वाले प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल के अस्थि-अवशेष हैं (पृ० ३०)। इन अवशेषों के मानवों की शरीर-संरचना में ऐसी कोई बात नहीं मिलती जिससे उन्हें 'पूर्णमानव' वर्ग में न रखा जा सके। दूसरे, सन् १९५१ ई० में सी० कून नामक विद्वान् ने ईरान की **हूतूगुफा** से पूर्ण-मानव एक का कपाल प्राप्त किया। इसकी आयु ७५,००० से एक लाख वर्ष पूर्व तक मानी जाती है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल में जिस 'पूर्णमानव' जाति का प्रभुत्व स्थापित हुआ उसका अस्तित्व पहले से ही था। इसके अतिरिक्त, ईरान में एक लाख वर्ष पुराने पूर्णमानवों के अस्थि-अवशेष मिलने से यह भी संकेत मिलता है कि ३५,००० वर्ष पहले यूरोप में पूर्णमानवों का आगमन सम्भवतः **पश्चिमी एशिया** से हुआ। इसका समर्थन पेलेस्टाइन में गैलिली समुद्र के पास और कर्मेल पर्वत की उपत्यका में मिलने वाले अस्थि-अवशेषों से भी होता है (पृ० ४३), क्योंकि यह परवर्ती-पूर्व-पाषाण-कालीन 'पूर्णमानव' और नियण्डर्थल जातियों के रक्त मिश्रण का प्राचीनतम प्रमाण है।

यूरोप की पूर्णमानव जातियां—जिस समय 'पूर्णमानव' जाति ने नियण्डर्थलों को पराजित करके यूरोप पर अधिकार स्थापित किया वह कई शाखाओं में विभाजित हो चुकी थी। यूरोप में इसकी **चार शाखाएं** ज्ञात हैं—

(अ) **क्रोमान्यों-मानव** (Cro-Magnards)—इस मानव के अवशेष १८८६ ई० में दक्षिणी फ्रांस में क्रोमान्यों गुफाओं में मिले इसलिए इसे क्रोमान्यों मानव कहते हैं। बाद में इसके बहुत से अवशेष फ्रांस के अन्य प्रदेशों, जर्मनी, स्वीट्जरलैण्ड और वेलस से प्राप्त हुये। यह मानव ५'१०" से ६'४" तक लम्बा होता था। उसका कपाल उन्नत, मुखाकृति चौड़ी तथा ठोडी और नाक नोकीली होती थीं (चित्र २३)।

(आ) **ग्रिमाल्डी-मानव** (Grimaldians)—इस मानव के अवशेष १९०१ में फ्रांस में मेडीट्रेनियन सागर के तट पर ग्रिमाल्डी नामक गुफाओं में मिले। यूरोप में ऐसे अवशेष अन्य किसी स्थान से नहीं मिले हैं। ये अवशेष एक स्त्री और युवक—सम्भवतः माँ और पुत्र—के हैं। स्त्री की लम्बाई ५'३" तथा बालक की ५' है। प्रो० वरनो (Verneau) के अनुसार इनके कपाल, ठोड़ी और दाँत आधुनिक नीग्रो जाति से मिलते-जुलते हैं। यद्यपि इलियट स्मिथ तथा आर्थर-कीथ इत्यादि विद्वानों ने इस निष्कर्ष से असहमति प्रकट की है तथापि यह सर्वथा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सम्भव है कि ये अवशेष ऐसे व्यक्तियों के हों जो किसी दुर्घटनावश अफ्रीका से यूरोप आ गये हों।

(इ) **कोंब कोपेल** (Combe-copelle) मानव—इस मानव के अवशेष फ्रांस के दोर्दोन (Dordogne) स्थान से १९०९ ई० में प्राप्त हुये। इस जाति के मानवों का सिर गोल, नाक चौड़ी, जबड़ा छोटा और ठोड़ी विकसित होती थी परन्तु कद क्रोमान्यों से बहुत छोटा—कुल दो फुट ३ इंच के लगभग—होता था।

(ई) **शांसलाद** (Chancelade) मानव—इस जाति के मनुष्य, जिनके अवशेष १८८८ में फ्रांस में प्राप्त हुये, कद में सबसे छोटे होते थे। पाँच फुट से अधिक तो इनमें कोई न था। परन्तु इनका शरीर भारी तथा खोपड़ी बड़ी होती थी। अधिकांश विद्वान् इस जाति को ग्रीनलैण्ड की आधुनिक एस्किमो जाति से मिलती-जुलती मानते हैं।

एशिया और अफ्रीका की मानव जातियाँ—यूरोप के बाहर एशिया और अफ्रीका में परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल से सम्बन्धित पुरातात्त्विक अन्वेषण बहुत कम हो पाये हैं, इसलिये इन महाद्वीपों में 'पूर्णमानव' जाति के विकास का चित्र प्रस्तुत करना कठिन है। जहाँ तक एशिया का सम्बन्ध है हम हाल ही में अन्वेषित **हूतूमानव** (ईरान) का उल्लेख कर चुके हैं। दक्षिण-पूर्वी एशिया में जावा से प्लीस्टोसीन युग के अन्तिम चरण के स्तरों में दो उल्लेखनीय अस्थि-अवशेष मिले हैं। इन अवशेषों को **वादजक** और **सोलो मानवों** के अवशेष कहा जाता है। इनकी शरीर-संरचना में कुछ नियण्डर्थलसम तत्त्व पाये जाते हैं।

अफ्रीका के मानव अवशेषों में सर्वप्रथम **रोडेशियन-मानव** के अवशेषों का उल्लेख किया जा सकता है जो १९२१ में रोडेशिया के ब्रोकनहिल नामक स्थान पर खानों में खुदाई करते समय एक गुफा के अन्तिम भाग में मिले थे। इन अवशेषों में कपाल का कुछ भाग, रीढ़ की हड्डी, वस्ति प्रदेश का कुछ भाग तथा टाँग की अस्थियाँ सम्मिलित हैं। प्रारम्भ में विद्वानों की यह धारणा थी यह मानव नियण्डर्थल से मिलता-जुलता था, परन्तु आजकल यह माना जाता है कि रोडेशियन-मानव क्रोमान्यों के अधिक निकट था।

१९१३ ई० में ट्रांसवाल में एक मानव की अस्थियाँ मिलीं। यह मानव **बोस्कोप-मानव** कहलाता है। यद्यपि ये अस्थियाँ टूटी-फूटी अवस्था में मिली हैं तथापि इनसे यह सिद्ध हो जाता है कि यह मानव 'पूर्णमानव' वर्ग का था।

उपकरण

नये उपकरण—परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल में यूरोप में जो नयी जातियाँ आईं वे नियण्डर्थलों से अधिक प्रबुद्ध थीं और उनकी सौन्दर्य-भावना समस्त पाषाण-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

काल की किसी भी जाति से अधिक समुन्नत थी। इनका जीवन भी पूर्वगामी जातियों के जीवन से कहीं अधिक जटिल था; इसलिये उनको विविध प्रकार के हथियारों की आवश्यकता पड़ती थी। इन हथियारों के निर्माण के लिए वे अपनी पूर्वगामी जातियों के समान केवल पाषाण पर ही निर्भर नहीं रहते थे वरन् **सींग, हाँथी दाँत** और **अस्थियों** का भी प्रचुरता से प्रयोग करते थे। इन नवीन द्रव्यों के हथियारों को समुचित रूप देने के लिये उन्होंने पॉलिश करने की विधि का आविष्कार किया। कालान्तर में इस विधि का प्रयोग नव-पाषाणयुग में पत्थर के हथियारों को सुन्दरतर बनाने के लिए किया गया। उन्होंने पाषाण-हथियारों के बनाने की नई विधियों का भी आविष्कार किया। मध्य-पूर्व-पाषाणकाल तक पाषाण हथियार मुख्यत: आन्तरिक (Core) अथवा फलक (Flake) के बनते थे। परवर्ती-पूर्व-पाषाण-कालीन जातियों ने आन्तरिक और फलक के स्थान पर **ब्लेड-हथियारों** (Blade) को प्रधानता दी। 'ब्लेड' पतले समानान्तर फलक (Flake) को कहते हैं। इनका निर्माण करना अधिक सुविधाजनक था और ऐसे औजार उनके कलाकारों के लिए भी उपयोगी होते थे। ब्लेड हथियारों में सबसे प्रसिद्ध **रुखानी** या नक्काशी-यन्त्र (Burin या Graver) नाम का हथियार है जिसकी नोक छेनी की नोक के आकार की परन्तु बहुत छोटी होती थी।

प्रमुख संस्कृतियाँ—पुरातत्त्ववेत्ताओं ने परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन संस्कृतियों को **तीन युगों** में बाँटा है—ऑरिन्येशियन, सौल्युट्रियन, और मैग्डेलेनियन। यह स्मरणीय है कि इन संस्कृतियों का तत्कालीन मानव जातियों के साथ सम्बन्ध जोड़ना लगभग असम्भव है। ऐसा बहुधा देखने में आता है कि एक ही जाति दो-तीन संस्कृतियों से और एक संस्कृति कई जातियों से सम्बन्धित है। दूसरे, इन संस्कृतियों का तिथिक्रम भी लगभग अज्ञात है। केवल साधारणरूप से इनका क्रम निर्धारित किया जा सकता है।

(अ) ऑरिन्येशियन संस्कृति (Aurignacian Culture)—परवर्ती-पूर्व-पाषाण-काल की प्रथम संस्कृति फ्रांस की ऑरिन्याक गुफा के नाम पर ऑरिन्येशियन कहलाती है (चित्र २४)। इसको तीन उपयुगों में विभाजित किया जाता है। प्रारम्भिक-ऑरिन्येशियन (Upper Aurignacian) या **शेतलपेरोनियन** (Chatel-perronian), **मध्य-ऑरिन्येशियन** तथा उत्तर-ऑरिन्येशियन अथवा **ग्रवेशियन** (Gravetian)[१]। इस संस्कृति का उदय सम्भवतः पश्चिमी एशिया में हुआ; लेकिन

१. पश्चिमी यूरोप में मध्य ऑरिन्येशियन के पश्चात् आने वाली ग्रवेशियन संस्कृति शेतलपेरोनियन का ही विकसित रूप थी। इसलिये पश्चिमी यूरोप में शेतलपेरोनियन और ग्रवेशियन संस्कृतियों को सम्मिलित रूप से पेरिगोरडियन (Perigordian) संस्कृति भी कहते हैं।

४

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

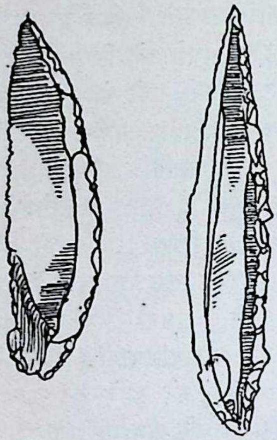

चित्र २४ : ऑरिन्येशियन उपकरण

मूस्टेरियन युग के अंत में यह धीरे-धीरे पूर्व और मध्य यूरोप, इटली, दक्षिणी-फ्रांस, उत्तरी स्पेन और इंग्लैण्ड में फैल गई। पेलेस्टाइन, पूर्वी अफ्रीका तथा साइबेरिया, उत्तरी चीन और दक्षिणी भारत में भी ऑरिन्येशियन हथियारों से मिलते-जुलते हथियार प्राप्त होते हैं। इनमें अस्थि के पॉलिशदार पिन, टेकुए (Awls) और बर्छी के सिरे, आन्तरिक के रन्दे (Core end-scrapers) और ब्लेड के सुन्दर चाकू इत्यादि सम्मिलित हैं।

(आ) सौल्युट्रियन संस्कृति (Solutrean Culture)—इस काल के ब्लेड उपकरण, जो पूर्वी स्पेन से काले सागर तक मिलते हैं अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध हैं (चित्र २५,१–४)। यद्यपि ये बिना पॉलिश किये बनाये गये हैं तथापि

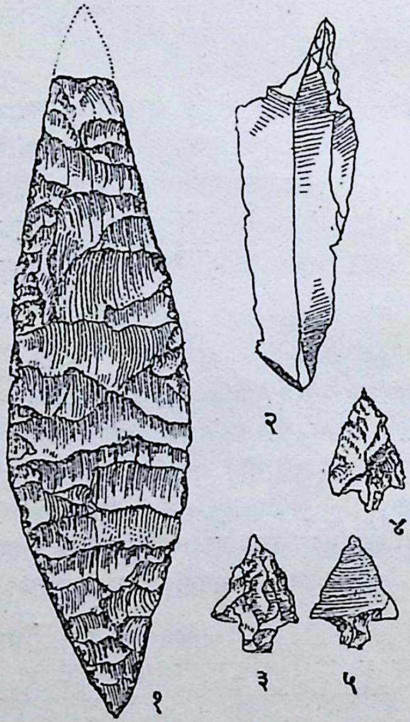

चित्र २५ : सौल्युट्रियन उपकरण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इनमें कुछ फौलाद के उस्तरे के समान पतले और धारदार हैं। सौल्युट्रियन युग के विशेष औज़ार लॉरेल (Laurel) और विलो (Willow) पत्तियों के आकार के बर्छी के सिरे थे (चित्र २५,१)। वे हिरण के सींग का टेकुआ तथा भाला और हड्डी की सुंई बनाने में भी निपुण थे।

(ई) मैग्डेलेनियन संस्कृति (Megdalenian Culture)—फ्रांस के ल-मेग्दालें स्थान के नाम पर यह संस्कृति मैग्डेलेनियन-संस्कृति कहलाती है। यह समस्त पूर्व पाषाण-युग की सर्वोत्तम संस्कृति है। इसमें पाषाण उपकरण क्रमशः छोटे बनने लगते (चित्र २६,५) हैं। ये अधिकांशतः ब्लेड से बनाये गए हैं परन्तु सींग, हाथीदाँत और हड्डी का भी प्रचुरता में प्रयोग हुआ है। इनमें हड्डियों के हार्पून (हेल मछली पकड़ने का भाला जिसमें रस्सी बँधी रहती थी (चित्र २६, २), सींग का भाला (चित्र २६,४) और सुंई इत्यादि उल्लेखनीय हैं। कुछ **अस्थि-सुंई** तो बहुत ही सुन्दर हैं (चित्र २६, ३)। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि ऐतिहासिक युग में १४ वीं-१५ वीं शताब्दी तक भी ऐसी सुन्दर सुइयाँ नहीं मिलतीं। इस काल के हथियारों पर बहुधा ऐसी आकृतियाँ खुदी हुई मिलती हैं जो कलात्मक दृष्टि से बहुत ही उच्चकोटि की हैं (चित्र २६, १)। मैग्डेलेनियनों ने एक ऐसा यन्त्र भी बनाया जिससे बर्छी को अधिक दूर फेंका जा सकता था और लक्ष्य को अधिक सफलता से भेदा जा सकता था।

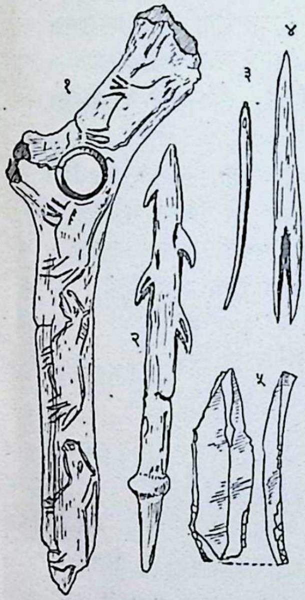

चित्र २६ : मैग्डेलेनियन उपकरण

उपर्युक्त तीनों संस्कृतियाँ मुख्यतः यूरोप और एशिया में पाई जाती हैं। इनकी समकालीन अफ्रीकी संस्कृतियाँ अतेरियन (Aterian) और केप्सियन (Capsian) हैं।

अतेरियन-संस्कृति में जो उत्तरी अफ्रीका में मिलती है, मूस्टेरियन परम्परा के पाषाणोपकरण मिलते हैं। इस संस्कृति के निर्माता दोनों ओर धारवाले बाण के सिरों का निर्माण करना जानते थे (चित्र २५, ५), इसलिए उनको **धनुष-बाण** के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है। धनुष-बाण मानव द्वारा निर्मित प्रथम मशीन है जिसकी सहायता से हाथों की शक्ति को एक बिन्दु पर केन्द्रित करके दूरस्थ लक्ष्य को भेदा जा सकता है। **केप्सियन** (Capsian Culture) यूरेशिया की उपर्युक्त तीनों संस्कृतियों के समान ब्लेड-संस्कृति है। इसका विस्तार दक्षिणी स्पेन,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इटली और उत्तरी अफ्रीका में था। इसके निर्माता भी धनुष-बाण से परिचित थे। इसके अतिरिक्त केप्सियनों ने पाषाणकाल में प्रथमबार लघुपाषाणोपकरणों (Microliths) का निर्माण किया। इनको मध्य-पाषाणकाल में अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई।

आर्थिक और सामाजिक जीवन

आवास, वस्त्र और भोजन—जिस समय 'पूर्णमानवों' ने नियण्डर्थलों को पराजित करके यूरोप पर अधिकार स्थापित किया, वहाँ की जलवायु पहले से अधिक उष्ण हो गई थी। इसलिए उनके लिए खुले आकाश के नीचे रहना इतना कठिन नहीं था। फिर भी चतुर्थ हिमयुग के शीत का अभी पूर्णरूपेण अन्त नहीं हुआ था, इसलिए वे गुफाओं का, जहाँ वे उपलब्ध होती थीं, प्रयोग करने से नहीं चूकते थे। अतः इस युग को **परवर्ती-गुफायुग** भी कहते हैं। जहाँ गुफाएँ उपलब्ध नहीं थीं वहाँ वे शीत से बचने के लिए खाल के तम्बू बनाते थे या भूमि में गड्ढा खोदकर उसपर खाल तान देते थे। सम्भवतः वे रहने के लिए झोपड़ियों का निर्माण करना भी जानते थे। उनके द्वारा बनाये गये चित्रों में देखने में से कुछ झोपड़ियों की आकृतियाँ मालूम होते हैं। लकड़ी कम उपलब्ध थी इसलिए वे अपने घरों को गर्म रखने के लिए बहुधा अस्थियाँ जलाते थे। खुरचन-यन्त्रों और सुंइयों से पता चलता है कि सम्भवतः वे खाल को सीकर **वस्त्र** का रूप देना भी जानते थे। पूर्वी स्पेन में तत्कालीन चित्रों में स्त्रियों को वस्त्र पहिने दिखाया गया है।

आर्थिक दृष्टि से परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानव अपने पूवजों के समान कृषि और पशु-पालन से अपरिचित था। उसकी आजीविका उसी प्रकार जंगली पशुओं का **शिकार** करने, फल और कन्द-मूल का संग्रह करने और मछली पकड़ने पर निर्भर थी जिस प्रकार नियण्डर्थल की। लेकिन वह इन कार्यों में नियण्डर्थल से अधिक कुशल हो गया था और धनुष-बाण जैसे नये हथियारों की सहायता से अधिक खाद्य-सामग्री का संग्रह कर सकता था। अब वह साधारण मछली पकड़ने के लिए काँटे का और बड़ी मछली पकड़ने के लिए हार्पून का प्रयोग करता था। शिकार में वह गड्ढे खोदकर बड़े-बड़े पशुओं को फँसाने की विधि जानता था। अब वह बनैले पशुओं के स्वभाव और ऋतु-परिवर्तन के अवसर पर उनके स्थानान्तरण के समय से भी परिचित हो गया था और इस अनुभव का लाभ भी उठाता था। उदाहरण के लिए उसे यह ज्ञात था कि उस युग में गर्मी के अन्त में, मैमथ, रैनडियर, भैंसे और जंगली घोड़े विशाल झुण्डों में, रूस और साइबेरिया के चरागाहों से, जाड़ा व्यतीत करने के लिए डेन्यूब की घाटी की ओर जाते हैं। इसलिए वह अपने कैम्प ऐसे स्थान पर लगाता था जहाँ से इन पशुओं का गुज़रना निश्चित हो। इस विधि के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अपनाने से उसे शिकार में अत्यधिक सफलता मिली। एक स्थान पर उसके द्वारा मारे गये रैंनडियर और जंगली भैंसों की अस्थियों के अतिरिक्त एक सहस्र से अधिक मैंमथों और एक लाख से अधिक जंगली घोड़ों की अस्थियाँ मिली हैं। सम्भवतः जंगली घोड़े का माँस उसका प्रिय भोजन था।

प्राचीनतम विशेषज्ञ—विशालकाय पशुओं का शिकार करने में बहुत से व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक था, इससे स्पष्ट है कि परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानव '**समूहों**' में रहता होगा। समूहों में सम्भवतः थोड़ा-बहुत श्रम-विभाजन होने लगा था। जैसा कि हम बाद में देखेंगे, उनके समाज में कम-से-कम एक व्यक्ति ऐसा अवश्य था जिसका कार्य सब मनुष्य नहीं कर सकते थे। वह व्यक्ति था कलाकार, जो उनके गुहा-गृहों को चित्रों से सुसज्जित करता था। यह विश्वास किया जाता है कि इन चित्रों का महत्त्व धार्मिक था; इसलिए यह कलाकार कुछ अर्थों में पुजारी भी कहा जा सकता है। इस **कलाकार-पुजारी** का कार्य उसका पूरा समय ले लेता था इसलिए उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति समाज को करनी पड़ती थी। अतः हम कह सकते हैं कि उनका कलाकार-पुजारी विश्व का **प्राचीनतम** '**विशेषज्ञ**' (Specialist) था।

पारस्परिक सम्पर्क—परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन समूह बहुधा **आत्म-निर्भर** होते थे। इस समय तक आर्थिक व्यवस्था इतनी जटिल नहीं हो पायी थी कि एक समूह दूसरे समूह पर निर्भर रहता। एक समूह के सदस्यों को जिन उपकरणों की आवश्यकता पड़ती थी उनको वे स्वयं बना लेते थे। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक समूह दूसरे समूहों से पृथक जीवन व्यतीत करता था। हमें ऐसे प्रमाण प्राप्त होते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि दूरस्थ समूहों में वस्तुओं का **आदान-प्रदान** होता रहता था। उदाहरणार्थ भूमध्यसागर में प्राप्त होने वाली सीपियाँ, कौड़ियाँ तथा सामुद्रिक मछलियों की हड्डियाँ मध्य फ्रांस में मैग्डेलेनियनयुगीन अवशेषों के साथ मिलती हैं। इससे स्पष्ट है कि समुद्रतट के समीप रहने वाले समूह मध्य फ्रांस के समूहों से वस्तुओं का आदान-प्रदान करते रहते थे।

कला

आभूषण इत्यादि—दूरस्थ प्रदेशों से आयात की गई सीपियों, कौड़ियों और दाँतों इत्यादि का प्रयोग **आभूषण** बनाने में किया जाता था। परवर्ती-पूर्व-पाषाण-कालीन मानव सौन्दर्य-प्रेमी थे। वे अपने शरीर को सजाने के लिए विविध प्रकार के आभूषण बनाते थे। इन आभूषणों पर नक्काशी करके भाँति-भाँति के डिज़ाइन और चित्र बनाये जाते थे। वे अपने मृतकों को लाल रंग से रंगते थे, इससे अनुमान किया जाता है कि जीवितावस्था में वे शरीर को विविध प्रकार के रंगों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

से रंगते होंगे। आजकल भी बहुत सी आदिम जातियों में **शरीर को रंगने** की था प्रचलित है।

स्थापत्य—परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानवों का सौन्दर्य-प्रेम और रंगों के प्रति आकर्षण उनके स्थापत्य और चित्रकला से भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है। अन्य बातों में जंगली होते हुए भी उन्होंने कला के क्षेत्र में जो कौशल प्रकट किया है वह आश्चर्यजनक है। कला के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने न केवल भित्ति-चित्र बनाये वरन् अस्थियों और सींगों से निर्मित औज़ारों और हथियारों पर नक्काशी करके सुन्दर आकृतियाँ (चित्र २६, १) और हाथीदाँत तथा मिट्टी की मूर्तियाँ भी बनाईं। वे बहुधा अपने अस्थि-निर्मित औज़ारों के हत्थे या किसी अन्य अंश पर पशु की आकृति खोद देते थे और अस्थियों के समतल टुकड़ों को पशुओं की आकृतियों में काट देते थे। अस्थियों के गोल डण्डों पर नक्काशी करके सुन्दर डिज़ाइन भी बनाये जाते थे। इनका उपयोग सम्भवतः चर्म-वस्त्रों पर छपाई करने में किया जाता था। पाषाण-खण्डों पर नीची-रिलीफ (Low relief) में बनाई गई आकृतियाँ भी प्राप्त होती हैं।

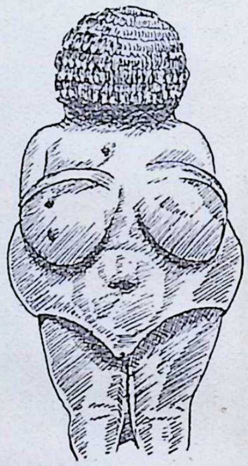

चित्र २७ : ऑरिन्येशियन युगीन नारी-मूर्ति

ऑरिन्येशियन युग की हाथीदाँत, पाषाण और मिट्टी तथा अस्थियों के मिले-जुले चूर्ण की लघु मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये मूर्तियाँ मिश्र, क्रीट, ऑस्ट्रिया, इटली, फ्रांस और स्पेन से प्राप्त होती हैं। कुछ **नारी-मूर्तियों** में, जिनको पुरातत्त्वशास्त्री 'रति' या 'वीनस' (Venus) की मूतियाँ कहते हैं, सिर बहुत छोटे दिखाये गये हैं। बालों के स्थान पर कुछ लकीरें खींच दी गई हैं परन्तु पेट, नितम्ब और स्तनों को अपेक्षाकृत बड़ा दिखाया गया है। ऐसा लगता है मानो उन्होंने गर्भवती स्त्रियों की मूतियाँ बनाने का प्रयास किया है। (चित्र २७) ये मूर्तियाँ मातृ-शक्ति के किसी रूप से सम्बन्धित हैं (पृ० ५८) परन्तु कला की दृष्टि से सुन्दर नहीं हैं। बाद की कुछ मूर्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक मनोहर मालूम होती हैं। एक हाथीदाँत की मूर्ति में (चित्र ३१, पृ० ६०) एक लड़की के जूड़े को चित्रित करने में कलाकार को अच्छी सफलता मिली है।

प्रारम्भिक चित्रकला—परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन चित्रकला के विकास की क्रमिक अवस्थाओं का विस्तरशः अध्ययन किया जा सकता है। उनके प्रारम्भिक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चित्र **आजकल के बाल-चित्रों के समान** लगते हैं। इनमें बहुधा चतुष्पद पशुओं के केवल दो पैर–एक अगला एक पिछला–दिखाये गये हैं। ऐसा लगता है मानों पशुओं की छायाओं को छोटा करके उनके चारों ओर रेखाएँ खींच दी गई हैं (चित्र २८) । यह युग विश्व इतिहास में चित्रकला का उषःकाल था । इसलिये वे **चित्रकला की मूल समस्या** को हल करने में असफल रहे तो आश्चर्य नहीं होना चाहिये । किसी वस्तु की आकृति बनाते समय हमें उसकी लम्बाई,चौड़ाई और मोटाई दिखानी होती है । पाषाण और मिट्टी इत्यादि में ये तीनों बातें होती हैं अतः इनसे मूर्तियाँ बनाना आसान होता है । लेकिन कागज़ या दीवार पर चित्र बनाते समय कलाकार के पास केवल लम्बाई और चौड़ाई होती है, मोटाई नहीं । इसलिये इन पर ज्योमितिक चित्र तो आसानी से बनाये जा सकते हैं, (जिनमें केवल लम्बाई और चौड़ाई दिखानी होती है) परन्तु पशु या मानव की आकृति बनाने में कठिनाई होती है क्योंकि कागज़ में मोटाई न होने पर भी मोटाई का भाव देना होता है। आजकल यह बात हमें बहुत आसान लगती है परन्तु परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानव के लिए यह अत्यन्त कठिन कार्य था। उसे इस समस्या का हल स्वयं खोजना पड़ा था । इस आविष्कार का महत्त्व केवल कला के क्षेत्र में ही नहीं वरन् विज्ञान और साहित्य के लिए भी है; क्योंकि लिपि का विकास, जिस पर हमारा सारा ज्ञान-विज्ञान निर्भर है, चित्रकला के जन्म के बिना असम्भव था ।

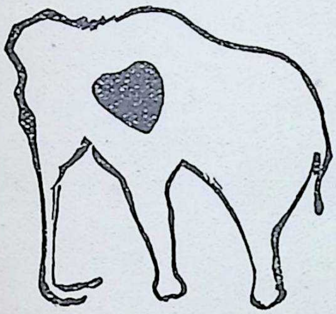

चित्र २८ : ऑरिन्येशियन युगीन हस्ती चित्र

मैग्डेलेनियन चित्रकला—एक बार चित्रकला सम्बन्धी कठिनाइयों पर विजय पा लेने के बाद प्रगति सहज हो गई। धीरे-धीरे उनकी 'तकनीक' सुधरती गई और कलाकृतियों का सौन्दर्य बढ़ता गया । मैग्डेलेनियन-युग तक पहुँचते-पहुँचते उनके चित्र तकनीक और सौन्दर्य दोनों की दृष्टि से इतने उत्कृष्ट हो जाते हैं कि आधुनिक कलाकारों के लिए भी उनका निर्माता होना गौरव का कारण हो सकता है। उनकी चित्रकला के सर्वोत्तम नमूने १८७९ ई० में उत्तरी स्पेन में **अलतमीरा** स्थान की प्रागैतिहासिक गुफाओं की छतों और दीवारों पर प्राप्त हुये हैं (प्लेट १) । इनमें चार रंगों से बनाया गया जंगली भैंसे का एक चित्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह मैग्डेलेनियन युग की ही नहीं, समस्त प्रागैतिहासिक काल की चित्र-कला का सर्वोत्तम नमूना है । कुछ चित्र ऐसे हैं जिन्हें **संकेत-चित्र** (Suggestion-pictures) कहा जा सकता है (चित्र ८, पृ०२३) । एक चित्र में रैनडियरों के झुण्ड का अंकन है । इसमें पीछे एक और आगे तीन रैनडियरों की आकृतियाँ बनाई

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गई हैं; शेष का रेखाओं द्वारा संकेत मात्र कर दिया गया है। इस प्रयास में कलाकार को पूर्ण सफलता मिली है। उत्तरी स्पेन के अतिरिक्त पूर्वी स्पेन से भी कुछ सुन्दर चित्र प्राप्त हुये हैं (चित्र २२, पृ०२३)। इनमें कुछ में शिकार के दृश्य उत्कीर्ण किये गये हैं। मानव-आकृतियों का अङ्कन इस प्रदेश के चित्रों की विशेषता है (चित्र ३०)।

चित्रों को बनाने में वे **नैसर्गिक रंगों** का प्रयोग करते थे। काला, लाल, पीला और सफेद रंगों का विशेषरूप से प्रयोग किया गया है। रंगों का चूर्ण बनाकर उसमें चर्बी मिला दी जाती थी। उनके द्वारा प्रयुक्त रंग अभी तक यथावत् मिलते है। **ब्रुश** का प्रयोग वे करते थे या नहीं, कहना कठिन है। यह सर्वथा सम्भव है कि वे इसका प्रयोग जानते हों, क्योंकि ब्रुश बनाने के लिए उन्हें बाल पर्याप्त मात्रा में सुलभ थे।

परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन चित्रकला का हेतु--इन चित्रों को बनाने में तत्कालीन कलाकारों का क्या उद्देश्य था, इस विषय में विद्वानों ने बहुत से अनुमान लगाये हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि ये चित्र उनकी विशुद्ध **कलात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति** हैं। कुछ अन्य विद्वान् यह विश्वास करते हैं कि पाषाण-कालीन कलाकारों का उद्देश्य अपने हथियारों और रहने की **गुफाओं को सज्जित करना** मात्र था। परन्तु कुछ तथ्य ऐसे हैं जिनके कारण इन मतों को स्वीकार करना कठिन हो जाता है। **एक** तो ये चित्र बहुधा ऐसे स्थानों से प्राप्त होते है, जहाँ दिन में भी घोर अंधकार रहता था और आजकल भी प्रकाश का प्रबन्ध करने में कठिनाई होती है। तत्कालीन कलाकार को पत्थर के प्यालों (चित्र २९) या पशुओं के कपाल में चर्बी जलाकर इन अंधेरी गुफाओं को प्रकाशित करना पड़ता होगा। अगर कलाकार का उद्देश्य अपनी सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्त करना मात्र होता तो वह ऐसे दुर्गम और अंधकारपूर्ण गुहा-गह्वरों में जाने के बजाय द्वार के पास सुप्रकाशित भित्तियों पर चित्र बनाता। **दूसरे**, कुछ चित्र ऐसे स्थानों पर बनाये गये हैं जहाँ कलाकार को बड़ी कष्ट-कर मुद्रा में बैठना पड़ा होगा। कहीं उसने सीधे लेटकर, कहीं उल्टे लेटकर और

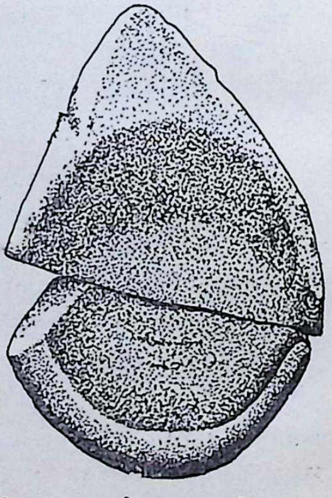

चित्र २९ : पूर्व-पाषाणकालीन पत्थर का प्याला

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कहीं अपने साथी के कन्धे पर बैठकर चित्र बनाये होंगे। स्पष्ट है कि गुफाओं को सजाने अथवा अपनी सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिये इतने कष्ट उठाने की आवश्यकता न थी। **तीसरे**, बहुधा देखने में आता है कि भित्तियों पर पर्याप्त स्थान सुलभ होने पर भी पुराने चित्रों के ऊपर नवीन चित्र बना दिये गये हैं। जहाँ लगभग एक से और समकालीन चित्रों के ऊपर नवीन चित्र बना दिये गये हैं, वहाँ यह बात और भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कलाकार का उद्देश्य अपने 'घर' की सजावट करना या विशुद्ध कलानुभूतियों को अभिव्यक्त करना नहीं था।

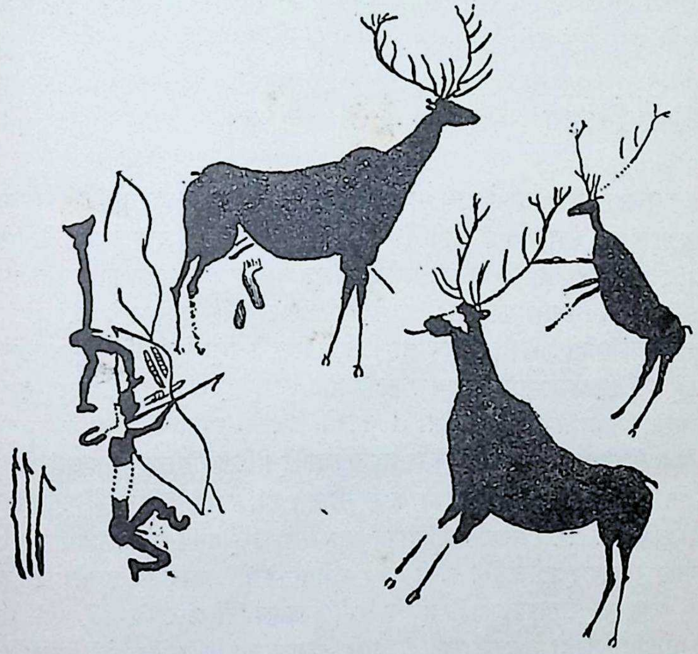

चित्र ३० : पूर्वी स्पेन की चित्रकला

फ्रेज़र, रिनाख़ तथा बर्किट इत्यादि विद्वानों ने यह मत प्रकट किया है कि ये चित्र उनकी **धार्मिक विचारधारा तथा खाद्य समस्या से सम्बन्धित** हैं। यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि इन चित्रों में अधिकांशतः रैनडियर, मैमथ, भालू, भैंसे और घोड़े इत्यादि पशुओं का चित्रण है। इन पशुओं का उनके जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान था। इनसे उन्हें न केवल खाने के लिए मांस मिलता था वरन् हथियार बनाने के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लिए सींग, हाथीदाँत और अस्थियाँ तथा तम्बू और वस्त्र बनाने के लिए खाल भी मिलती थी। दूसरे, कुछ चित्रों में शिकार का दृश्य अंकित किया गया है (चित्र ३०)। किसी-किसी पशु के शरीर में भाला घुसा हुआ दिखाया गया है। सम्भवतः उनका विचार था कि किसी पशु का शिकार करने के पहले यदि उसकी आकृति का शिकार कर लिया जाय तो वास्तविक शिकार में निश्चित रूप से सफलता मिलती है, क्योंकि उस पशु की आत्मा चित्र में पहले ही बन्दी बना ली जाती है। इस विचारधारा को मानवशास्त्री **सादृश्यमूलक** (Sympathetic magic) कहते हैं। किसी बड़े पशु का शिकार करने के पहले चित्रकार उस पशु की आकृति बनाते होंगे और उसे अपने साथी शिकारियों को दिखाते होंगे। इससे शिकारियों में साहस और आत्मविश्वास आता होगा। आदिम जातियों के लिए यह प्रक्रिया जादू से कम नहीं थी।

धार्मिक विश्वास

उनकी चित्रकला के सम्बन्ध में यदि उपर्युक्त अनुमान सही है तो मानना पड़ेगा कि वह स्थान जहाँ उनके चित्रकार चित्र बनाते थे, एक प्रकार के 'मन्दिर' थे। इन मन्दिरों में **'चित्रों का दर्शन'** करना शुभ माना जाता था। इस दृष्टि से देखने पर इन चित्र बनाने वाले कलाकारों को मन्दिरों का **पुजारी** कहा जा सकता है। उन्हीं के हाथ में वह जादू था जिसके द्वारा वे पशुओं की आत्मा पकड़कर अपने समूह के लिए खाद्य-सामग्री सुलभ करते थे। स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्तियों का समूह में अत्यधिक प्रभाव रहता होगा। उनको परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानव के धार्मिक विश्वासों का संरक्षक कहा जा सकता है। उनके द्वारा निर्मित **नारी-मूर्तियाँ** (चित्र २७, पृ० ५४) मातृ-शक्ति के किसी रूप की उपासना से सम्बन्धित हो सकती हैं। हथियारों पर आकृतियाँ खोदने का अर्थ उन्हें अधिक प्रभावशाली बनाना होगा। आभूषण प्रतीत होने वाली लघु मूर्तियाँ किसी प्रकार के **ताबीज** हो सकती हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सभी कलाकृतियों और चित्रों के पीछे धार्मिक भावना निहित हो। इनमें कुछ के पीछे विशुद्ध सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति का प्रयास भी हो सकता है।

परलोक के विषय में उनके विचार नियण्डर्थल युग से अधिक विकसित हो गये थे, क्योंकि वे न केवल अपने मुर्दों को दफनाते थे वरन् उनके साथ आभूषण, हथियार और खाद्य-पदार्थ भी रख देते थे। मृतकों के शरीर को वे लाल रंग से रंगते थे। लाल रंग रक्त का प्रतीक है। सम्भवतः उनकी यह धारणा थी कि मृत शरीर को लाल रंग से रंग देने पर जीवन की लालिमा पुनः लौट आती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ज्ञान-विज्ञान

परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानवों ने अप्रत्यक्षरूप से बहुत-सा ज्ञान अर्जित किया और भावी ज्ञान-विज्ञान की नींव डाली। उदाहरणार्थ पशुओं के चित्र बनाने के लिए उन्होंने उनकी शरीर-संरचना का गहन अध्ययन किया। वे इस दिशा में कितनी प्रगति कर चुके थे यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि उनके चित्रों में एक ही प्रकार के प्राणी—जैसे मछली—की विभिन्न जातियों को पहिचानना सम्भव है। वे शरीर में हृदय के महत्त्व को जानते थे। एक चित्र में हाथी का हृदय बिलकुल ठीक स्थान पर बनाया गया है(चित्र २८, पृ० ५५) दूसरे, उन्होंने खाद्याखाद्य-पदार्थों के सम्बन्ध में नियण्डर्थलों के ज्ञान को बढ़ाया। कौन पदार्थ खाने योग्य हैं, कौन पदार्थ विषाक्त हैं, खाद्य-पदार्थ कहाँ मिलते हैं, किस ऋतु में प्राप्त होते हैं तथा किस पशु को कहाँ और कब पाया जा सकता है—ये सब बातें उनका ज्ञान-विज्ञान थीं। इन्हीं से कालान्तर में वनस्पति-शास्त्र, प्राणी-शास्त्र और ऋतुशास्त्र इत्यादि विशिष्ट विद्याओं का जन्म हुआ।

पूर्व-पाषाणकालीन मानव की उपलब्धियाँ

पूर्व-पाषाणकाल मनुष्य की कहानी का वह लम्बा युग है जिसमें वह अन्य प्राणियों पर विजय प्राप्त करके अपने अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयास कर रहा था। आर्थिक दृष्टि से वह प्रकृतिजीवी था। उसके हथियार पाषाण, अस्थि, हाथीदाँत और सींग के होते थे और उसकी उदरपूर्ति केवल जंगली कन्दमूल, फल और शिकार से होती थी। इन कठिनाइयों के कारण प्रगति बहुत धीमी थी, फिर भी प्रगति हुई, इसमें सन्देह नहीं। मनुष्य के **हथियार** प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पाषाण और सींग इत्यादि के बनते रहे परन्तु उनके प्रकार, उपयोगिता और सौन्दर्य में वृद्धि होती गई। दूसरे, मनुष्य ने इस युग में **अग्नि** पर नियन्त्रण स्थापित किया, जिसके कारण न केवल उसका भोजन अधिक स्वादिष्ट हो गया वरन् उसे शीत और अंधकार से भी मुक्ति मिली और भविष्य में धातुओं से उपकरण बनाने का मार्ग खुला। यह ठीक है कि वह नितान्त प्रकृतिजीवी रहा परन्तु इससे कालान्तर में उसे लाभ ही हुआ। प्रकृति पर अवलम्बित रहने के कारण उसके लिए **प्रकृति का अध्ययन** करना आवश्यक हो गया। अब वह यह जान गया कि कौन पशु और वनस्पति कब और कहाँ मिलती है और उनका वह किस प्रकार उपयोग कर सकता है। इसे परवर्ती युगों के ज्ञान-विज्ञान का बीज कहा जा सकता है। पूर्व-पाषाणकालीन मानव को सबसे अधिक सफलता **कला** के क्षेत्र में मिली। यह निश्चित है कि आजकल एक सहस्र व्यक्तियों में एक भी ऐसा नहीं मिलेगा जो चित्रकला का थोड़ा बहुत प्रशिक्षण पाये बिना ऐसे चित्र बना दे जैसे मैग्डेले-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नियमों ने बनाये। लेकिन इन सब उपलब्धियों के बावजूद पूर्व-पाषाणकालीन मानव आर्थिक क्षेत्र में नितान्त असफल रहा। अतः एक सीमा तक पहुँचने के पश्चात् उसकी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

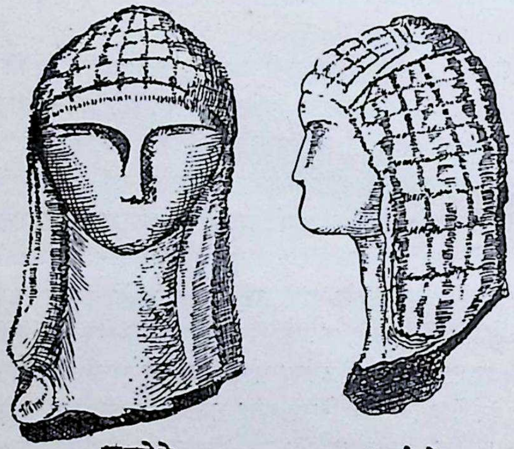

सामने से पार्श्व से

ऊपर दिया गया चित्र मैग्डेलेनियन युग के एक कलाकार द्वारा बनाई गई हाथीदाँत की एक मूर्ति की अनुकृति है। इसमें कलाकार ने जूड़े के अङ्कन में विशेषरूप से सफलता प्राप्त की है। तुलना कीजिये ऑरिग्नेशियन युग की 'वीनस' अथवा 'रति' की आकृति से (चित्र २७)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

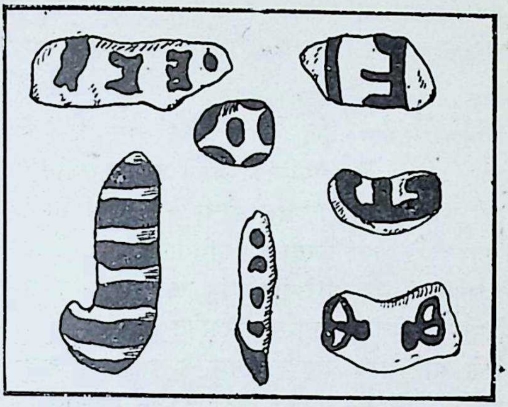

७

मध्य-पाषाणकाल

'But thinks, admitted to that equal sky,
His faithful dog shall bear him company.'

—Pope : *Essay on Man*

संक्रान्ति-काल

पूर्व-पाषाणकाल में विभिन्न प्रकारों के हथियारों और औज़ारों के अस्तित्व तथा कला की अप्रतिम प्रगति होने के बावजूद मनुष्य को आर्थिक क्षेत्र में अधिक सफलता नहीं मिली। यद्यपि मैग्डेलेनियन-युग में मैमथों, रैनडियरों, जंगली भैंसों और घोड़ों का सामूहिक रूप से शिकार होने के कारण खाद्य-समस्या किसी सीमा तक सुलझ गई और मनुष्य को इतना अवसर मिलने लगा कि वह कला के क्षेत्र में कुछ कौशल दिखा सके, तथापि पूर्व-पाषाणकाल के अन्त तक वह पूर्णतः प्रकृति-जीवी बना रहा। वह यह नहीं जान पाया कि वह किस प्रकार कृषि और पशु-पालन के द्वारा प्रकृति को अधिक खाद्य-सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य कर सकता है। यह दोनों आविष्कार मनुष्य ने नव-पाषाणकाल (Neolithic Age) में किये।

ऊपर दिये गये चित्र में मध्य-पाषाणयुग के प्रस्तर-खण्डों पर बने डिजायन दिखाये गये हैं। सम्भवतः ये किसी प्रकार के संकेत-चिह्न हैं जिनका अर्थ समझना असम्भव है। तुलना कीजिये मैग्डेलेनियन युगीन चित्रकला से (चित्र २२ पृ० ४६; चि० २८ पृ० ५५; चि० ३० पृ० ५७; प्लेट ९)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नव-पाषाणकाल विश्व के बहुत से प्रदेशों में पूर्व-पाषाणकाल के एकदम बाद प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु यूरोप और कुछ अन्य प्रदेशों में मानव सभ्यता पूर्व-पाषाणकाल के बाद एक संक्रान्ति-काल से गुजरती है जिसे पुरातत्त्ववेत्ता 'मध्य-पाषाणकाल' (Mesolithic Age या Middle Stone Age) कहते हैं।

भौगोलिक परिवर्तन—भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से मध्य-पाषाणकाल प्लीस्टोसीन और होलोसीन युगों का संक्रान्ति काल है। मैग्डेलेनियन-युग के बाद यूरोप और एशिया के भौगोलिक स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन होते हैं। भूमध्यसागर, जो अब तक दो विशाल झीलों के रूप में था, भर जाता है और अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त करता है। एशिया के मध्य में जो विशाल समुद्र था, वह शुष्क होने लगता है और धीरे-धीरे आजकल के केस्पियन सागर, काला सागर और मध्य एशिया की झीलों के रूप में परिवर्तित हो जाता है। स्पेन अफ्रीका से, इंगलैण्ड यूरोप से और अरब प्रायद्वीप मिश्र से पृथक हो जाता है। भारत का आधुनिक स्वरूप भी इसी समय प्रकट होता है। इन महाद्वीपों के **जलवायु** में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। पश्चिमी एशिया और उत्तर-पश्चिमी भारत इत्यादि, जो अब-तक घास के हरे-भरे मैदान थे, अधिक शुष्क होने लगते हैं और यहाँ रेगिस्तानी परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। यूरोप में हिमयुगीन शीत का सर्वथा अन्त हो जाता है और उत्तरी यूरोप **वनों** से ढक जाता है। ठण्डी जलवायु में रहने वाले पूर्व-पाषाणकालीन पशु जैसे मैमथ, रैनडियर शनैः-शनैः उत्तर की ओर खिसक जाते हैं। इनका स्थान दक्षिण के वे पशु ले लेते हैं जो अपेक्षाकृत उष्ण जलवायु में रहने के अभ्यस्त थे। नये पशुओं के साथ पूर्ण-मानव जाति की नई शाखाएँ यूरोप में पदार्पण करती हैं और क्रोमान्यों तथा उनसे सम्बन्धित जातियों को पराजित करके अपना अधिकार स्थापित कर लेती हैं। इन परिवर्तनों का मनुष्य के जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। उसे स्वयं को नये परिवर्तनों के अनुकूल बनाना पड़ा। इसलिये तात्कालिक दृष्टि से देखने पर इस काल की सभ्यता पूर्व-पाषाणकाल की मैग्डेलेनियन संस्कृति से हीनतर दिखाई देती है। परन्तु दीर्घकालिक विकास की दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ह्रास में ही भावी उन्नति का बीज छिपा हुआ था। इससे मनुष्य को उन आविष्कारों के लिए तैयारी करने का अवसर मिल गया जो नव-पाषाणकाल में उनके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने वाले थे।

मध्य-पाषाणकालीन मानव का जीवन

भोजन और शिकार—मैग्डेलेनियन मानवों के समान मध्य-पाषाणकालीन मानव का प्रमुख भोज्य-पदार्थ शिकार से प्राप्त मांस था। परन्तु इस काल में **शिकार** किये जाने वाले पशु और शिकार की प्रणाली में पूर्णरूपेण परिवर्तन हो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जाता है। मैग्डेलेनियन युग में मनुष्य मैमथ, जंगली भैंसे तथा घोड़े इत्यादि का शिकार करता था। इनका शिकार करने के लिए उसे सामूहिक रूप से प्रयत्न करना पड़ता था। अतः इस युग में मनुष्य वड़े-बड़े समूहों में रहता था। लेकिन मध्य-पाषाणकाल में इन विशालकाय पशुओं की संख्या कम होती जा रही थी, इसलिये मनुष्य को बड़े-बड़े समूहों में रहने की आवश्यता न रही। इस काल के पशुओं, जैसे हिरण, खरगोश, और बारहसिंगा इत्यादि का शिकार अकेले या **छोटे-छोटे समूहों** में करना आसान पड़ता था। इसलिये मध्य-पाषाणयुग में हमें मनुष्य यूरोप के विभिन्न भागों में छोटे-छोटे समूहों में बिखरा दिखाई देता है। इस काल में मनुष्य ने एक नयी बात अवश्य सीखी और वह थी शिकार करने में **कुत्ते** का सहयोग प्राप्त करना। कुत्ता मनुष्य का सबसे पुराना पशु-मित्र है। यह पहला पशु है जिसे मनुष्य पालतू बनाने में समर्थ होता है। इसकी सहायता से मनुष्य हिरण और खरगोश इत्यादि का शिकार आसानी से कर सकता था। इस सहायता के बदले में कुत्ते को मृत पशुओं के मांस का एक भाग मिल जाता था। कालान्तर में मनुष्य ने यह पाया कि कुत्ते से अन्य बहुत से कार्य लिये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त एक पशु को पालतू बना लेने से उन्हें अन्य पशुओं को पालतू बनाने का भाव और प्रेरणा मिली।

कला—मध्य-पाषाणकालीन मानव मैग्डेलेनियनों के समान गुफाओं में अथवा तम्बुओं में रहता था परन्तु वह उनको चित्रों से सजाने में रुचि नहीं रखता था। यह ठीक है कि उसको रंगों से प्रेम था, परन्तु उसने इसकी अभिव्यक्ति गुफाओं की भित्तियों और छतों को पशुओं की आकृतियों से सज्जित करके नहीं वरन् छोटे-छोटे गोल **पाषाण-खण्डों पर सरल चिह्न** बनाकर की है (चित्र ३२, पृ० ६१)। सम्भवतः इनका निर्माण संकेत-चित्रों के रूप में हुआ है। इस समय तक कुछ वस्तुओं के चिह्न निश्चित रूप से रूढ़ हो चुके थे। कलाकार वस्तु का चित्र बनाये विना कुछ रेखाओं से उसका भाव प्रकट कर सकता था। इन चित्रों को देखने वाले व्यक्ति के इन रेखाओं के अर्थों से परिचित होने पर निश्चितरूप से इस विधि के द्वारा श्रम और समय बचाया जा सकता था। कम-से-कम धार्मिक और व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से ये संकेत-चित्र वही काम दे सकते थे जो पूर्ण चित्र देते थे। यह विधि सौन्दर्य प्रेम के ह्रास परन्तु बौद्धिक प्रगति की सूचक है। इसमें मनुष्य द्वारा भविष्य में किये जाने वाले एक महान आविष्कार—लिपि—का बीज निहित है।

लघुपाषाणोपकरण और संस्कृतियाँ—परवर्ती-पूर्व-पाषाण काल में ही हमें हथियारों और औज़ारों को छोटा करने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगती है। फ्रांस और इटली में ग्रवेशियन युग, पूर्वी स्पेन में सौल्युट्रियन युग तथा उत्तरी अफ्रीका

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में केप्सियन युग के ऐसे बहुत से उपकरण मिलते हैं जिनका आकार बहुत छोटा है और आकृति ज्योमितिक है। ऐसे उपकरणों को 'लघुपाषाणोपकरण' या **माइ-**

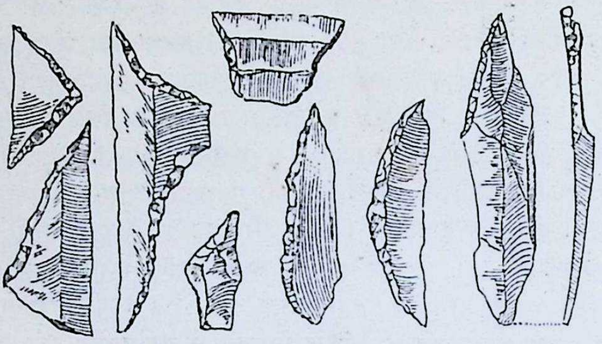

चित्र ३३ : लघुपाषाणोपकरण

क्रोलिथ (Microliths) कहते हैं।(चित्र ३३) मध्य-पाषाणकाल की लगभग सभी संस्कृतियों में **ज्योमितिक आकार के** सुडौल परन्तु तीक्ष्ण माइक्रोलिथों का निर्माण होता है। इनको लकड़ी या हड्डी के डण्डों में लगाकर भाँति-भाँति के दाँतेदार उपकरण बनाये जाते थे। यह परम्परा बहुत से स्थानों पर मध्य-पाषाणकाल के पश्चात् नवपाषाण और कांस्यकाल में भी चलती रहती है।

(अ) **अजीलियन** (Azilian) **संस्कृति**--यूरोप की प्राचीनतम मध्य-पाषाण-कालीन संस्कृति फ्रांस के ल-मास दाजील(L9 Masd' Azil) स्थान के नाम पर अजीलियन-संस्कृति कहलाती है। इसका विकास उन प्रदेशों में हुआ जहाँ पहले मैग्डेलेनियन संस्कृति फलफूल रही थी। इस संस्कृति के निर्माता गुफाओं में रहते थे। वे अपने चित्रित प्रस्तर-खण्डों और लघु हार्पूनों के लिए, जिनमें नीचे एक छेद होता था, प्रसिद्ध हैं। इनके पाषाण हथियार मैग्डेलेनियन प्रकार के खुरचन-यन्त्र और नक्काशी-यन्त्र (Burin) हैं, परन्तु इनका आकार बहुत छोटा हो गया है।

(आ) **तार्देनुआजियन** (Tardenoisian) **संस्कृति**—प्रारम्भ में यह अजी-लियन संस्कृति से सम्बन्धित प्रतीत होती है। इसके निर्माता ज्योमितिक आकार के लघु उपकरणों (Microliths) को हड्डी के डण्डों में लगाकर हार्पून बनाते थे। उनके माइक्रोबरीन (Microburin) भी प्रसिद्ध है, परन्तु अस्थि-उपकरण बहुत कम मिलते हैं।

(इ) **अस्तूरियन** (Asturian) **संस्कृति**—यह केवल स्पेन और पुर्तगाल के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों में मिलती है। इसके निर्माता अपनी उदरपूर्ति के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लिए शेलफिश पर निर्भर रहते थे। इनके पाषाण उपकरण बहुत ग्रादिम कोटि के—इयोलिथों से मिलते-जुलते—थे।

(ई) **किचेन-मिडेन** (Kitchen Midden) **संस्कृति**—पिछले सौ वर्षों में फ्रांस, सार्डीनिया, पुर्तगाल, ब्राजील, जापान, मंचूरिया ग्रौर डेनमार्क में प्रागैतिहासिक काल के ग्रवशेषों के ऐसे ढेर मिले हैं जिनमें समुद्री प्राणियों, जैसे मछलियाँ, कछुए, घोंघे इत्यादि के खोल, थलचर पशुग्रों की ग्रस्थियाँ तथा हड्डी, सींग ग्रौर पाषाण के ग्रौज़ार ग्रौर हथियार सम्मिलित हैं। डेनमार्क में इन्हें किचेन-मिडेन (Kitchen Midden) कहते हैं। इनका समय ग्रब से लगभग १०,००० वर्ष पूर्व माना जाता है।

(उ) **मैग्लेमोजियन** (Maglemosian) **संस्कृति**—परवर्ती-मध्य-पाषाणयुग में दक्षिणी स्वीडन ग्रौर नार्वे इत्यादि देशों में भी शीत कम हो जाने पर, पूर्व-पाषाण-कालीन जातियों के वंशज ग्राकर रहने लगे। उनके प्रारम्भिक हथियार ग्रॉरि-न्येशियन ग्रौर मैग्डेलेनियन हथियारों के समान हैं परन्तु कुछ बाद में एक विशिष्ट संस्कृति का विकास हो जाता है जिसे मैग्लेमोजियन-संस्कृति (Maglemosian-Culture) कहा जाता है। इस संस्कृति के निर्माता ग्रस्थियों से मछली पकड़ने के काँटे ग्रौर हार्पून बनाते थे। वे रैनडियर के सींग में बीच में छेद करके ग्रौर हत्था लगाकर कुल्हाड़ी बनाते थे ग्रौर हड्डियों के उपकरणों पर ज्योमितिक चित्र भी बनाना जानते थे।

मध्य-पाषाणकाल की तिथि—पूर्व-पाषाणकाल की ग्रपेक्षा मध्य-पाषाणकाल का तिथिक्रम निश्चित करना ग्रधिक कठिन है। एक तो पूर्व-पाषाणकाल बहुत दीर्घ समय तक चला। दूसरे, उस युग में मानव प्रगति की प्रक्रिया बहुत धीमी रही। उस समय विभिन्न प्रदेश की संस्कृतियों में ग्रधिक ग्रन्तर नहीं था। परन्तु मध्य-पाषाणकाल में प्रगति की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है ग्रौर विभिन्न प्रदेशों में सांस्कृतिक भेद बढ़ जाता है। तीसरे, किसी प्रदेश में पूर्व-पाषाणकालीन व्यवस्था का शीघ्र ग्रन्त हो जाता है ग्रौर किसी में बहुत बाद में होता है। उदाहरण के लिए मेसोपोटामिया में मध्य-पाषाणकालीन प्रवृतियाँ १८,००० ई० पू० में दिखाई देने लगती हैं जबकि डेनमार्क में पूर्व-पाषाणकालीन व्यवस्था ८,००० ई० पू० तक बनी रहती है। इसी प्रकार मध्य-पाषाणकाल का ग्रन्त भी विभिन्न प्रदेशों में ग्रलग-ग्रलग समय में होता है। पश्चिमी एशिया में मनुष्य कृषि-कर्म ग्रौर पशु-पालन से छः-सात सहस्र ई० पू० में ही परिचित हो जाता है जबकि यूरोप में इन ग्राविष्कारों का लाभ कई सहस्र वर्ष पश्चात् उठाया जाता है।

५

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

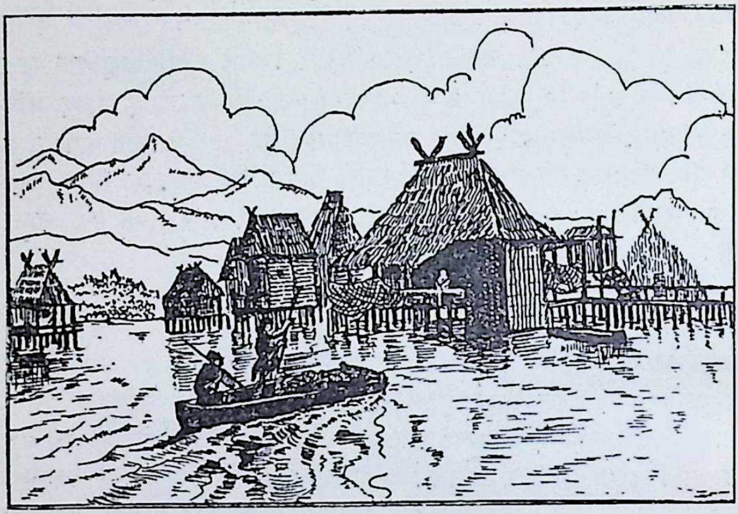

८

नव-पाषाणकाल

जिस समय यूरोप में प्लीस्टोसीन युग के अन्त और होलोसीन युग के प्रारम्भ में, अर्थात मध्य-पाषाणकाल में, भूमि वनों से आच्छादित होती जा रही थी और वहाँ की पूर्व-पाषाणकालीन जातियाँ स्वयं को नवीन परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयास कर रही थीं, पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका में महत्त्वपूर्ण भौगोलिक परिवर्तन हो रहे थे। इन परिवर्तनों का प्रभाव मनुष्य के रहन-सहन पर भी पड़ा। अभी तक मनुष्य अपनी उदरपूर्ति के लिए पूर्णरूपेण प्रकृति पर अवलम्बित था। इस युग में उसने पहली बार **कृषि** कर्म (Agriculture) और **पशुपालन** (Domesti-

---

इस पृष्ठ के ऊपर स्वीट्जरलैण्ड के झीलों में बनाये गये नव-पाषाणकालीन मकानों का काल्पनिक चित्र दिया गया है (पृ० ७९)। दाहिनी ओर किनारे से मकान में जाने के लिए पुल बना है जिसका एक भाग रात में हटाया जा सकता था। झोपड़ियों के बाहर मछली पकड़ने के जाल लटक रहे हैं। एक ऊँची झोपड़ी में जाने के लिए सीढ़ी बनी है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

cation of Animals) के द्वारा स्वयं खाद्य-पदार्थों का 'उत्पादन' करना प्रारम्भ किया; दूसरे शब्दों में उसने प्रकृति को अधिक खाद्य-सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य किया। इसके अतिरिक्त उसने वनों से प्राप्त लकड़ी से नाव, मकान तथा कृषि-कर्म में काम आने वाले यन्त्रादि बनाना, अर्थात काष्ठ-कला (Carpentry), **मृद्भाण्ड बनाना** (Pottery) तथा **कपड़ा बुनना** (Weaving) इत्यादि कलाओं का आविष्कार भी किया। इन सब उद्योगों में उसे नये ढंग के मज़बूत और तीक्ष्ण उपकरणों की आवश्यकता पड़ी। इसकी पूर्ति के लिए उसने **पाषाण के पॉलिशदार औज़ार** और हथियार (Polished Stone Implements) बनाना सीखा। इन उपकरणों के कारण पुरातत्त्ववेत्ता इस युग को नव-पाषाणकाल (Neolithic या New Stone Age) के नाम से पुकारते हैं।

नव-पाषाणकालीन उपनिवेश और तिथिक्रम

नव-पाषाणकाल निश्चित रूप से होलोसीन युग में प्रारम्भ हुआ। अभी तक किसी स्थान से ऐसा संकेत नहीं मिला है जिससे यह प्रतीत हो कि इस काल की सभ्यता का जन्म प्लीस्टोसीन युग में ही हो गया था। **पूर्वी मेडीट्रेनियन** प्रदेश से प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि सर्वप्रथम नव-पाषाणकालीन सभ्यता के तत्त्व इसी प्रदेश में उदित हुए (मानचित्र ३)। इस प्रदेश में मानव समूह बहुधा, शताब्दियों तक ही नहीं सहस्राब्दियों तक, एक ही स्थान पर निवास करते रहते थे। उनकी मिट्टी, सरपत और प्रस्तर-खण्डों से बनी झोपड़ियां नष्ट हो जाती थीं, परन्तु वे उनके स्थान पर दूसरी बना लेते थे, जिससे पुरानी झोपड़ी के अवशेष नयी झोपड़ी के नीचे दब जाते थे। यह प्रक्रिया दीर्घ काल तक चलती रहती थी। धीरे-धीरे उस स्थान पर एक **टीला** (Tell) सा बन जाता था। यूनान, सीरिया, एशिया माइनर, तुर्किस्तान तथा ईरान के मैदान ऐसे टीलों से भरे पड़े हैं। इन टीलों की खुदाई करने पर ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक युग के अवशेष अविच्छिन्न रूप में मिल जाते हैं। ऐतिहासिक युग के प्राचीनतम अवशेषों की तिथि प्राप्त अभिलेखों के आधार पर तीन सहस्र ईसा पूर्व या इससे एक-दो शताब्दी अधिक मानी जाती है। इससे पुराने अवशेष ताम्र और कांस्य काल के और सबसे पुराने अवशेष नव-पाषाणकाल के हैं।

पश्चिमी एशिया के उपनिवेश—सबसे पुराना नव-पाषाणकालीन उपनिवेश, जिसका पुरातत्त्ववेत्ता पता लगा पाये हैं, जोर्डन राज्य में **जेरिको ग्राम** है (मानचित्र ३)। कार्बन (१४) परीक्षण से पता चलता है कि अब से ९,००० वर्ष पूर्व यहाँ पर शिकार और फल-मूल संग्रह करने के अतिरिक्त कृषि-कर्म और पशुपालन द्वारा जीवनयापन करने वाले मनुष्य निवास कर रहे थे। अतः हम कह सकते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हैं कि पश्चिमी एशिया में नव-पाषाणकाल का जन्म लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व हुआ। परन्तु यह स्मरणीय है कि इस ग्राम के निवासी मृद्भाण्डों और पॉलिशदार पाषाण उपकरणों से अपरिचित थे। यह अवस्था यहाँ पर ६,००० ई० पू० तक चलती रही। लगभग इसी समय पेलेस्टाइन में कार्मेल पर्वत की गुफाओं के पास कुछ मानव-समूह निवास कर रहे थे जिन्हें **नतूफियन** कहा जाता है। उनके पाषाण उपकरण मध्य-पाषाणकालीन यूरोपीय उपकरणों से साम्य रखते हैं, परन्तु इनके साथ एक नया उपकरण हँसिया मिलता है जिसका उपयोग घास काटने में किया जाता होगा। कुर्दिस्तान के **जरमोग्राम** (लगभग ४७५० ई० पू०) में भी लगभग यही अवस्था मिलती है। यद्यपि इस स्थान के निवासियों ने मिट्टी की मूर्तियों को आग में पकाना सीख लिया था तथापि उनके पात्र अभी तक लकड़ी या पत्थर के होते थे। ईरान में **स्यालक** ग्राम के प्रथम स्तर से, जिसकी तिथि कुछ बाद की है, हमें पहली बार कृषि-कर्म और पशुपालन के साथ कातने, बुनने और मृद्भाण्ड बनाने की कला का आविष्कार हो जाने के प्रमाण मिलते है। मध्य एशिया में अस्तराबाद नगर के समीप **अनो** (Anau) स्थान के प्राचीनतम स्तरों में कृषि-कर्म, पशुपालन, मृद्भाण्ड कला और वस्त्र-निर्माण कला के चिह्न मिलते हैं।[1]

मिश्र के उपनिवेश—नील नदी के पश्चिमी किनारे पर **फायूम** (Fayum) स्थान से ४३०० ई० पू० के अवशेष मिले हैं जिनमें पालित पशुओं की अस्थियाँ, मछली पकड़ने के हार्पून, लकड़ी के हत्थों में माइक्रोलिथ लगाकर बनाये गये हँसिये (चित्र ३५,४), अनाज संग्रह करने के लिए बनाये गये गड्ढ़े (चित्र ३६) अर्थात अन्नागार, पाषाण की पॉलिशदार कुल्हाड़ियाँ, मृद्भाण्ड, पत्थर के तकुए और चकमक पत्थर के तीरों के सिरे सम्मिलित हैं। उनके तकुओं और कर्घों के अवशेषों से स्पष्ट है कि वे कपड़ा बुनना भी जानते थे। उनके अन्नागार विश्व इतिहास में अन्न संग्रह करने के प्रयास का प्रथम उदाहरण हैं। इस प्रकार के अन्नागार नील नदी के डेल्टे के उत्तर-पश्चिमी भाग में **मेरिम्द** (Merimde) स्थान के उत्खनन में, तत्कालीन गाँव के प्रायः हर घर में, मिले हैं। मिश्र के मध्य में **तासा** (Tasa) और नील नदी के पूर्व में **अल-उमरी** (Al Omri) स्थानों से भी नव-पाषाणकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ के निवासी कृषि-कर्म, पशुपालन, मृद्भाण्ड-कला और वस्त्र-निर्माण से परिचित थे। तासा के समीप **बदरी** (Badari) स्थान से प्राप्त अवशेषों की सभ्यता कुछ बाद की है। बदरी के निवासियों के व्यापारिक

---

१. बहुत से विद्वान् अनो के प्राचीनतम स्तरों को अन्य स्थानों के स्तरों से प्राचीन मानते हैं और यह विश्वास प्रकट करते हैं कि मध्य एशिया में ही नव-पाषाणकालीन संस्कृति और कृषि-कर्म का जन्म हुआ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

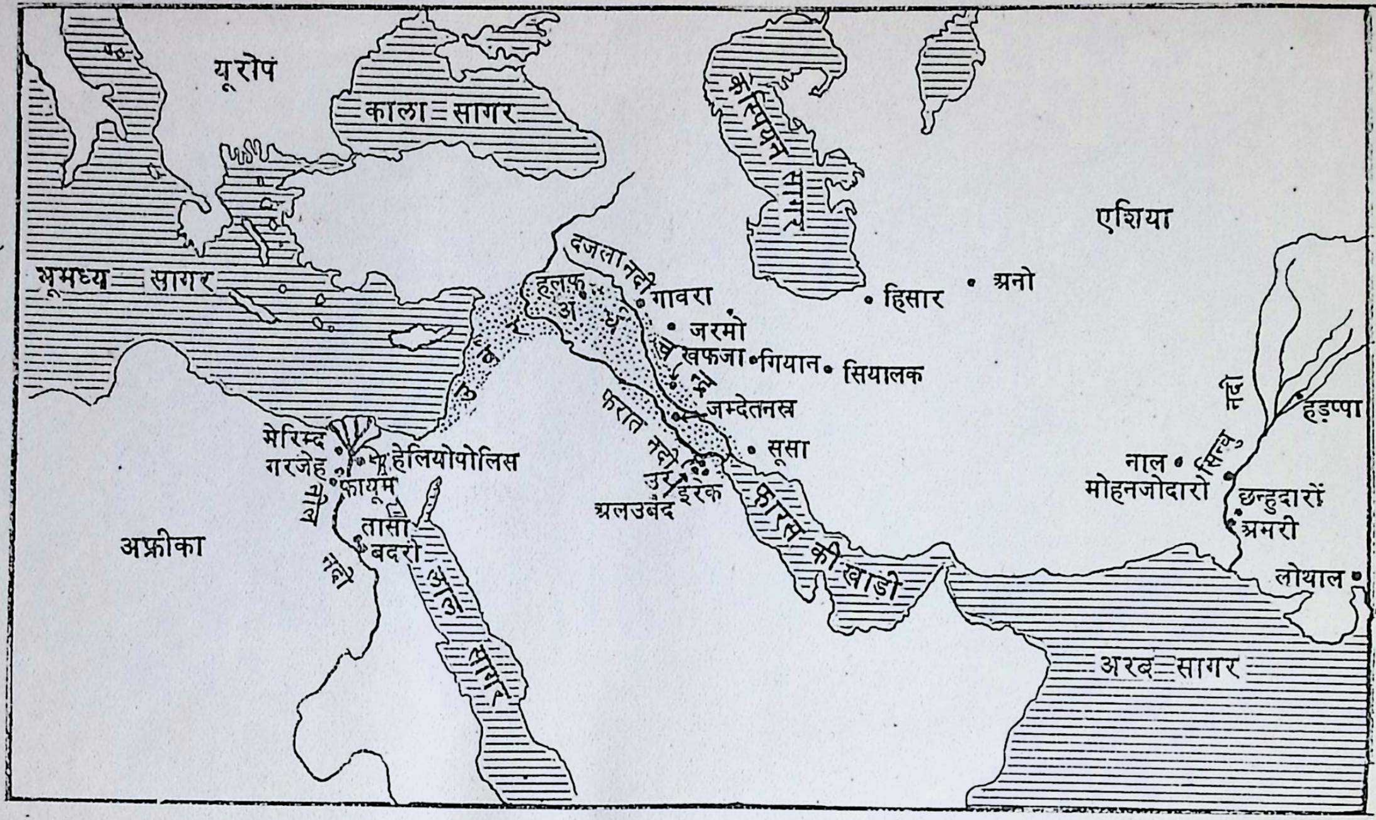

मानचित्र ४

सभ्यता का उदय-स्थल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सम्बन्ध सीरिया से थे और वह लालसागर में उत्पन्न होने वाली कौड़ियों का प्रयोग करते थे।

यूरोप में नव-पाषाणकाल——उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नव-पाषाण-कालीन संस्कृति के कुछ तत्त्वों का उदय अब से लगभग दस सहस्र वर्ष पूर्व पश्चिमी एशिया और मिश्र में हो चुका था। छः या सात सहस्र वर्ष पूर्व इसका विकसित रूप सामने आता है। यूरोप में नव-पाषाणकाल का प्रारम्भ कुछ सहस्र वर्ष पश्चात् होता है। इस महाद्वीप में सर्वप्रथम क्रीट और यूनान में और उसके पश्चात् मध्य-यूरोप और पश्चिमी प्रदेशों में कृषि-कर्म और पशुपालन इत्यादि उद्योग प्रचलित होते हैं। डेनमार्क, उत्तरी जर्मनी और स्वीडन में तो नव-पाषाणकाल का प्रारम्भ २००० ई० पू० में होता है। मध्य यूरोप के नव-पाषाणकालीन मानवों को **डेन्यूबियन** कहा जाता है। उनकी संस्कृति के विकास का विशेष परिचय **कोल्न लिन्डलथाल** (Koln Lindelthal) ग्राम के उत्खनन से मिला है।

नव-पाषाणकालीन संस्कृति अपने चर्मोत्कर्ष के समय चीन से लेकर आयरलैण्ड तक फैली हुई थी। अब भी इस संस्कृति का सर्वथा अन्त नहीं हो पाया है। अफ्रीका, अमरीका, न्यूजीलैण्ड और अन्य कई प्रदेशों में बहुत सी आदिम जातियाँ हाल ही तक नव-पाषाणयुगीन जीवन व्यतीत कर रही थीं और कुछ अब भी कर रहीं हैं।

नये आविष्कार

नव-पाषाणकालीन संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ लगभग सभी तत्कालीन जातियों में मिलती हैं, परन्तु उनका रूप जलवायु और अन्य प्रादेशिक विविधताओं के कारण स्थान-स्थान पर बदला हुआ मिलता है। उदाहरण के लिए किसी स्थान पर वस्त्र बनाने के लिए पटसन का प्रयोग किया गया है तो कहीं सूत का। कहीं पशुपालन को अधिक महत्त्व दिया गया है तो कहीं कृषि-कर्म को। इस पर भी नव-पाषाणकालीन सभ्यता के प्रमुख तत्त्वों की साधारण रूप से विवेचना की जा सकती है।

कृषि-कर्म

कृषि-कर्म का आविर्भाव——जैसा कि हम देख चुके हैं, नव-पाषाणकालीन क्रान्ति को जन्म देने वाली परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल की प्रगतिशील मैग्डेलेनियन जाति नहीं, वरन् पश्चिमी एशिया, उत्तरी-पूर्वी अफ्रीका और सम्भवतः उत्तर-पश्चिमी भारत की अपेक्षाकृत पिछड़ी हुई जातियाँ थीं। ये प्रदेश पूर्व-पाषाणकाल के अन्त में घास के हरे-भरे मैदान थे। होलोसीन युग के प्रारम्भ में जब जलवायु में विश्वव्यापी परिवर्तन हुये और उत्तरी यूरोप हिम के स्थान पर वनों से आच्छान-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दित हो गया तब इन प्रदेशों का जलवायु भी पहले से अधिक शुष्क हो गया और घास के हरे-भरे मैदान रेगिस्तान बनने लगे। इससे यहाँ के निवासियों को केवल शिकार पर जीवन व्यतीत करना असम्भव मालूम देने लगा और वे यह सोचने के लिए विवश हो गये कि खाद्य-सामग्री कैसे बढ़ाई जाये। इस विषय में पुरुष वर्ग तो अधिक सफलता प्राप्त न कर सका, परन्तु **स्त्रियों ने,** जो जंगली घासों के खाने योग्य बीज इत्यादि जमा करती रहती थीं, यह खोज की कि अगर इन बीजों को गीली मिट्टी में दबा दिया जाये तो कुछ महीनों में उन बीजों की कई गुनी मात्रा उत्पन्न हो जाती है। इससे कृषि-कर्म का जन्म हुआ। कृषि-कर्म का जन्म सर्वप्रथम किस प्रदेश में हुआ, इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। पेरी महोदय ने यह श्रेय नील नदी की घाटी को दिया है और रूसी विद्वान् वैविलोव ने अफग़ानिस्तान और उत्तर-पश्चिमी चीन को। आजकल अधिकांश विद्वान् **पेलेस्टाइन के नतूफियनों** को इसका आविष्कार करने वाला मानते हैं।

मुख्य फसलें—प्रकृति ने ऐसे बहुत से पौधे बनाये हैं जिनके बीज मनुष्य खा सकता है, जैसे गेहूँ, जौ, चना, चावल, बाजरा, मक्का, जमींकन्द और आलू इत्यादि। इनमें **गेहूँ** और **जौ** सबसे अधिक शक्तिवर्द्धक हैं। इनका संग्रह करने में भी दिक्क़त नहीं होती और ये थोड़े बीज से ही काफी मात्रा में उत्पन्न हो जाते हैं।

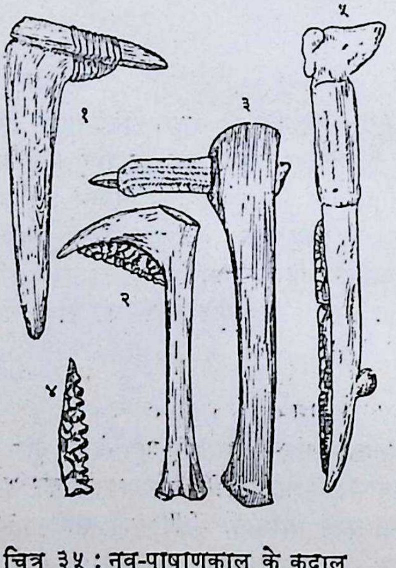

चित्र ३५ : नव-पाषाणकाल के कुदाल

इसके अतिरिक्त इनके उत्पादन में श्रम भी बहुत कम पड़ता है। केवल खेत जोतने, बोने और काटने के समय मेहनत करनी पड़ती है; शेष समय किसान

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अन्य धन्धों में लगा रह सकता है। इसलिये प्राचीनकाल से ये दोनों अनाज मनुष्य के भोजन का प्रमुख अङ्ग रहे हैं। जिस समय नव-पाषाणकालीन महिलाओं ने इनकी ओर ध्यान दिया, ये केवल जंगली रूप में ही प्राप्य थे। धीरे-धीरे मनुष्य ने इन्हें **संकर-उत्पत्ति** (Cross-breeding) द्वारा आधुनिक रूप दिया।

कृषि सम्बन्धी उपकरण—नव-पाषाणकालीन मनुष्य को कृषि-कर्म में सहायता देने वाले कृत्रिम साधन बहुत कम थे। यहाँ तक कि वह हल से भी परिचित नहीं था। खेत जोतने का काम वह **कुदाली** (Hoe) से लेता था (चित्र ३५, १–३) या भूमि के उर्वर होने पर वैसे ही बीज डाल देता था। खेत काटने के लिए वह अस्थि या लकड़ी के दस्तों में माइक्रोलिथ लगाकर **हँसिए** बनाता था (चित्र ३५,४–५)। उसे एक फ़सल कटने से लेकर दूसरी फ़सल कटने तक, अर्थात लगभग एक वर्ष तक, पहली फ़सल के अनाज पर निर्भर रहना पड़ता था। इसलिए उसके लिए आवश्यक हो गया कि वह **अन्नागार** (Granary) बनाकर अनाज का संग्रह करे। नव-पाषाणकालीन अन्नागार फायूम (चित्र ३६), मेरिम्दे तथा कोल्न-लिन्डलथाल इत्यादि स्थानों पर मिले हैं। इसी प्रकार अनाज पीसने के लिये चक्कियाँ और रोटी पकाने के लिए **चूल्हों** का निर्माण भी आवश्यकतावश किया गया।

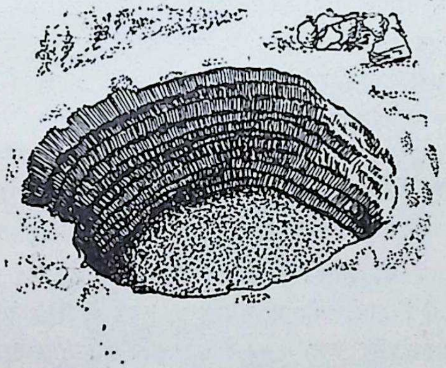

चित्र ३६ : फायूम से प्राप्त अन्नागार

कृषि-कर्म की समस्याएँ—जलवायु सम्बन्धी प्रादेशिक विविधताओं के कारण नव-पाषाणकाल में विभिन्न प्रदेशों के कृषकों ने विभिन्न प्रयोग किये। उदाहरण के लिये ईरान और मेसोपोटामिया के कृषक वर्षा पर निर्भर नहीं रह सकते थे, इसलिये वहाँ कृत्रिम **सिंचाई-व्यवस्था** अन्य स्थानों की अपेक्षा पहले की जाने लगी। यूरोप में, इसके विपरीत, वर्षा पर निर्भर रहा जा सकता था। परन्तु वहाँ की भूमि दो तीन फ़सल के बाद शक्तिहीन हो जाती थी। डेन्यवियन इस कठिनाई से

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मुक्ति पाने के लिए खेत को दो-तीन फ़सल के बाद छोड़ देते थे। कुछ वर्षों में, जब आसपास की सब भूमि अनुर्वर हो जाती थी तो वह किसी अन्य स्थान पर जा बसते थे। यह विधि आज भी अफ्रीका की बहुत सी जातियाँ और आसाम की नागा जाति अपनाये हुये हैं। परन्तु इस विधि में कठिनाई बहुत आती हैं। इसलिये कुछ स्थानों पर भूमि की उर्वरता लौटाने के लिये कृत्रिम उपायों की खोज होने लगी। डेन्यूबियनों ने यह खोज की कि अगर खेत में जंगली घास उगने दी जाय और फिर उसे जला दिया जाय तो भूमि की उर्वरता लौट आती है। यूनान और बल्कान-प्रदेश की जातियों ने पशुओं और मानवों के मलमूत्र से भूमि की उर्वरता लौटाने की विधि का आविष्कार किया।

पशुपालन

पशुपालन का आविर्भाव—पश्चिमी एशिया और मेडीट्रेनियन-प्रदेश में रहने वाली जातियाँ कृषि के साथ पशुपालन भी करती थीं। यह उद्योग भी तत्कालीन जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण अस्तित्व में आया। जब इन प्रदेशों में वर्षा कम होने लगी और घास के मैदान रेगिस्तानों में बदलने लगे तो यहाँ के वन्य पशु और मनुष्य, दोनों ही नखलिस्तानों के समीप रहने के लिए बाध्य हो गये। इनमें बहुत से पशु जैसे, गाय, भैंस, भेड़, बकरी तथा सुअर इत्यादि जो घास और चारा खाकर रह सकते थे, मानव आवासों के निकट चक्कर काटने लगे। इस समय तक मनुष्य इन पशुओं से काफी परिचित हो गया था। वह यह भी समझ गया था कि अगर पशु उसके समीप रहेंगे तो वह जब चाहे उनका शिकार कर सकता है। इसलिये उसने उनको अपने पास से भगाने के स्थान पर निकट आने के लिये प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया। वह अपने खेत से उत्पन्न चारा उन्हें खाने के लिए देने लगा और हिंस्र प्राणियों से उनकी रक्षा करने लगा। धीरे-धीरे ये पशु पूर्णरूपेण उस पर निर्भर रहने लगे। इस प्रकार पशुपालन उद्योग अस्तित्व में आया।

पहले पशुपालन या कृषि?—मनुष्य ने पहले पशुपालन प्रारम्भ किया या कृषि, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। बहुत से विद्वान् मानते हैं कि कुछ स्थानों पर पशुपालन और कुछ स्थानों पर कृषि-कर्म साथ-साथ आविर्भूत हुए। इसके विपरीत कुछ विद्वानों ने, जिनकी संख्या बहुत कम है, यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पशुपालन का जन्म कृषि से पहले हुआ। परन्तु अधिकांश विद्वान्, जिनमें गॉर्डन चाइल्ड भी सम्मिलित हैं, यह विश्वास करते हैं कि कृषि के अस्तित्व में आये बिना पशुओं के चारे की समस्या हल नहीं हो सकती थी इसलिये कृषि-कर्म का उदय पशुपालन के पूर्व हुआ होगा।

पशुपालन के लाभ—नव-पाषाणकालीन आर्थिक व्यवस्था में पशुपालन का महत्त्व कृषि से कम नहीं था। एक तो इससे मनुष्य के भोजन की समस्या बहुत कुछ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सुलझ गई। अब उसे शिकार की खोज में वनों में भटकना आवश्यक नहीं रहा। वह जब चाहे अपने पालित पशुओं को मारकर **मांस** प्राप्त कर सकता था। दूसरे, वह इनसे **खाल** और **चमड़ा** प्राप्त करता था जिनसे वस्त्र, तम्बू और भाण्ड जैसी उपयोगी वस्तुएँ बनती थीं। पशुओं के **सींगों** से औज़ार, हथियार और आभूषण बनते थे। तीसरे, उसने यह भी खोज की कि जिस खेत में पशु चरते रहते हैं उसमें अच्छी उपज होती है। धीरे-धीरे वह गोबर की **खाद** की महत्ता को समझ गया। चौथे, उसने भेड़ों से **ऊन** प्राप्त करके अपनी वस्त्र समस्या को सुलझाया। इससे कातने और बुनने की कलाएँ अस्तित्व में आईं। पाचवें, जब वह पशुओं के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हो गया तो उसने यह जाना कि उनका **दूध** भोजन के रूप में प्रयुक्त हो सकता है। पशुओं पर **माल लादकर** एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना यद्यपि उसने अपेक्षाकृत बाद में सीखा, तथापि यह भी पशु-पालन का एक अति महत्त्वपूर्ण लाभ था इसमें सन्देह नहीं।

पशुपालन का प्रभाव—प्रारम्भ में पशुपालन से समाज के आर्थिक जीवन में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन पालित पशुओं की संख्या बढ़ जाने पर नई-नई समस्याएं सामने आईं। पशुओं को चराना, जंगलों को जलाकर चरागाह बनाना, चारे के लिए विशेष फसल उगाना तथा ऐसे ही अन्य बहुत से कार्य थे जिनके कारण कुछ व्यक्ति अपना सारा समय पशुपालन में ही लगाने लगे। कुछ समूहों के आर्थिक जीवन का मूलाधार पशुपालन ही हो गया।

यहाँ पर यह स्मरणीय है कि नव-पाषाणकाल में खाद्य-सामग्री का 'उत्पादन' हुआ, इस का अर्थ यह नहीं है कि पूर्व-पाषाणकाल की फल-मूल और शिकार द्वारा भोजन संग्रह करने की प्रथा एकदम बन्द हो गई। शिकार, **मछली पकड़ना** तथा **फल-मूल का संग्रह** इस युग में भी थोड़ा बहुत चलता रहा। लेकिन धीरे-धीरे यह कार्य विशिष्ट व्यवसाय बनने लगे। आज भी मछली पकड़कर जीवन व्यतीत करने वाले मछेरे और शिकार करके उदरपूर्ति करने वाले व्याधों का पृथक व्यावसायिक श्रेणियों के रूप में अस्तित्व हैं।

मृद्भाण्ड कला

मृद्भाण्ड कला का आविष्कार—नव-पाषाणकालीन मानव केवल खाद्य-पदार्थों को अधिक मात्रा में उत्पन्न करके ही सन्तुष्ट नहीं हो गया। उसने कुछ ऐसी वस्तुओं का उत्पादन भी किया जो प्रकृति से प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त नहीं होतीं। इनमें मिट्टी से बरतन, सूत, पटसन और ऊन से वस्त्र और काष्ठ से नाव और कृषि-कर्म सम्बन्धी यन्त्रों का निर्माण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कृषि-कर्म और पशुपालन के कारण खाद्य-सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलने लगी थी परन्तु इसका उपयोग करने के लिए पात्रों का अभाव था। अभी तक मनुष्य के पात्र काष्ठ और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पाषाण से बनते थे, परन्तु इनकी सहायता से भोजन पकाना बहुत कठिन था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए मनुष्य ने मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का आविष्कार किया। यह आविष्कार कब और कैसे हुआ यह कहना कठिन है। हो सकता है किसी समय किसी स्त्री ने यह देखा हो कि मिट्टी से लिपी हुई टोकरी के आग में जल जाने पर टोकरी के आकार का पकी हुई मिट्टी का बरतन बच रहता है; और इस अनुभव से लाभ उठाकर उसने मृद्भाण्ड बनाने की कला को जन्म दिया हो। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यह आविष्कार मध्य-पाषाणकाल में ही हो गया था परन्तु इतना निश्चित है कि प्रचुर मात्रा में मिट्टी के बर्तन नव-पाषाण-काल में ही बने।

कुम्हार की कला की जटिलता—मृद्भाण्ड बनाना एक **रासायनिक-प्रक्रिया** है। गीली मिट्टी, जिससे बर्तन बनते हैं, पानी में घुल जाती है और सुखा लेने के बाद भी आसानी से टूट जाती है। लेकिन जब इसे ६००°C या इससे भी अधिक गर्म अग्नि में पकाया जाता है तो इसका लसलसापन मिट जाता है और यह लगभग पत्थर के समान कठोर हो जाती है। अब यह न तो पानी में घुलती है और न विना जोर लगाये इसे तोड़ा जा सकता है। वस्तुतः **कुम्हार की कला का मूल** इसी तथ्य में निहित है कि वह लसलसी मिट्टी को कोई भी आकार दे सकता है और आग में पकाकर उस आकार को स्थायी बना सकता है।

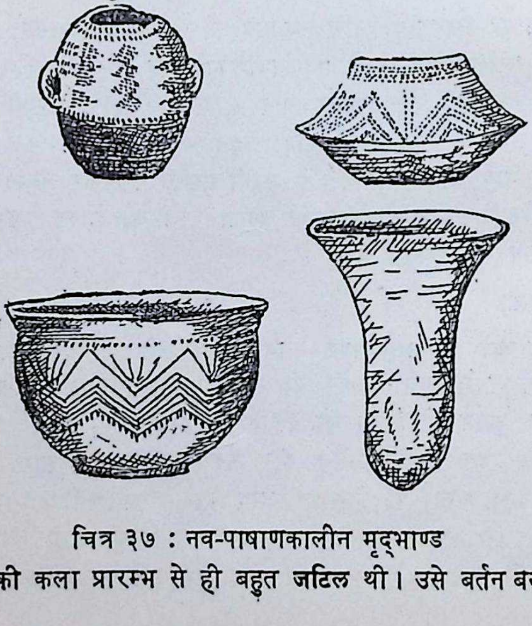

चित्र ३७ : नव-पाषाणकालीन मृद्भाण्ड

कुम्हार की कला प्रारम्भ से ही बहुत **जटिल** थी। उसे बर्तन बनाने के लिये

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अच्छी मिट्टी का चुनाव करना पड़ता था जिससे पकते समय बर्तन चटक न जाय। दूसरे शब्दों में उसे **अच्छी मिट्टी** की पहिचान से परिचित होना आवश्यक था। दूसरे, उसे यह जानना आवश्यक था कि गीली मिट्टी से बने बर्तनों को पकाने के प्रथम सुखाना होता है। मिट्टी से **इच्छित आकार** के भाण्डों का निर्माण करना भी कम कठिन नहीं था। प्रारम्भ में मनुष्य ने उसी आकार के बर्तन बनाये जिस आकार के उसके पत्थर और लकड़ी के बर्तन होते थे। धीरे-धीरे उसने यह खोज की कि लसलसी मिट्टी से अनेक आकार के बर्तन बनाये जा सकते हैं। परन्तु उस समय तक चाक (Potters' wheel) का आविष्कार नहीं हो पाया था। इसलिये वह अपनी कल्पना को सदैव मूर्तरूप नहीं दे सकता था। चाक के अभाव में वह सुराही और घड़ा इत्यादि का निर्माण करने के लिए **'छल्ला विधि'** (Ring method) का प्रयोग करता था। इसमें बर्तन का तला बनाकर उसके ऊपर मिट्टी की छल्लाकार पट्टियाँ एक दूसरे के ऊपर रखकर जोड़ दी जाती थीं। यह विधि बहुत कठिन थी परन्तु चाक के अभाव में इसके बिना बर्तन बनाना असम्भव था।

बर्तनों के आग में पक जाने पर मिट्टी का रंग बदल जाता है। यह रंग मिट्टी की किस्म, आग की तेजी और पकाने के ढंग तथा अन्य कई बातों पर निर्भर रहता है। नव-पाषाणकालीन मनुष्य ने यह सीख लिया था कि किस प्रकार बर्तनों को इच्छित रंग दिया जा सकता है। आग की लपट लगने से बरतन काले पड़ जाते थे। इस कठिनाई को दूर करने के लिए पश्चिमी एशिया में **भट्टी** (Oven) का आविष्कार हुआ जिसमें ९००°C से १०००°C तक ताप देने पर भी धुंआ लगकर बर्तन काले नहीं पड़ते थे। यूरोप में इस आविष्कार का लाभ लौह-युग के पर्व नहीं उठाया जा सका।

मृद्भाण्ड कला का प्रभाव—प्रारम्भिक मनुष्य के लिए लसलसी मिट्टी का प्रस्तरसम हो जाना जादू से कम नहीं था। पत्थर से उपकरण बनाते समय मनुष्य केवल वही आकार उत्पन्न कर सकता है जो उतने बड़े पाषाण-खण्ड में सम्भव हों। यही बात सींग और हड्डियों के साथ है। परन्तु मिट्टी के बर्तन बनाते समय यह बन्धन नहीं होता। इनके बनाने में मनुष्य अपनी कल्पना से काम ले सकता है। इसीलिए मृद्भाण्ड कला ने मनुष्य की विचार-शक्ति को बहुत प्रभावित किया।

कातने और बुनने की कला

मिश्र और पश्चिमी एशिया के नव-पाषाणकालीन अवशेषों से पता चलता है कि इस युग में कपड़ा बुनने की कला का आविष्कार हो गया था। सूत, पटसन और ऊन से बने वस्त्र पूर्व-पाषाणकाल के खाल और पत्तियों से बने वस्त्रों का स्थान लेने लगे थे। कपड़ा बुनने की कला भी बहुत ही **जटिल** है। इसका

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आविष्कार अन्य कई आविष्कारों और उपकरणों के अस्तित्व में आये बिना सम्भव नहीं था। सर्वप्रथम, इसके लिए एक ऐसे द्रव्य की आवश्यकता होती है जिससे सूत बन सके। मिश्र और यूरोप में इसकी पूर्ति **पटसन** से की गई। दूसरा द्रव्य **कपास** था। भारत में इसका प्रयोग ३००० ई० पू० में हो रहा था। लगभग इसी समय मेसोपोटामिया में **ऊन** का प्रयोग हो रहा था। इससे स्पष्ट है कि कपड़ा उद्योग के अस्तित्व में आने के लिए विशिष्ट प्रकार के पशुओं का पालन और उन पौधों की खेती करना आवश्यक था जिनसे उपर्युक्त द्रव्य प्राप्त हो सकें। दूसरे, वस्त्र निर्माण के लिए आवश्यक था कि सूत कातने के लिए **चर्खा** और बुनने के

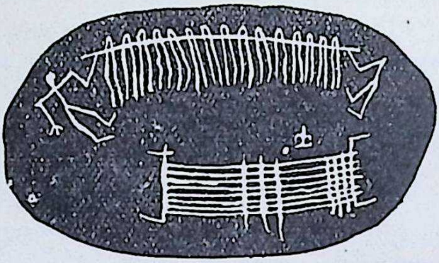

चित्र ३८

लिए **कर्घा** हों (चित्र ३८)। पुरातत्त्ववेत्ताओं को उत्खनन में चर्खे के कुछ अंश प्राप्त हुए हैं। कर्घे का आविष्कार एशिया में नव-पाषाणकाल में ही हो गया था। यह आविष्कार, जिसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है, विश्व के महानतम आविष्कारों में से एक है।

काष्ठकला और नये उपकरण

पॉलिशदार उपकरण—हम देख चुके हैं कि नव-पाषाणकाल में यूरोप वनों से आच्छादित था। उत्तरी अफ्रीका, पश्चिमी एशिया और उत्तर-पश्चिमी भारत का जलवायु भी, पूर्व-पाषाणकाल से अधिक शुष्क होने के बावजूद, आधुनिक काल से अधिक नम था। इसलिये इन प्रदेशों में वन्य काष्ठ का अब जैसा अभाव न था। नव-पाषाणकालीन मानव ने इस काष्ठ का उपयोग करने के लिये और अपने नये उद्योगों में, जिनका हमने ऊपर विवेचन किया है, सफलता प्राप्त करने के लिए नये पाषाणोपकरण बनाये। पूर्व-पाषाणकाल के मानव के हथियार और औज़ार बेडौल और खुरदरे होते थे। परन्तु नव-पाषाणकालीन मानव ने रगड़-रगड़ कर **चिकने, चमकदार** और **सुडौल** हथियार बनाने की विधि का आविष्कार किया। उनके हथियारों में कठोर पत्थर की **पॉलिशदार कुल्हाड़ी** (Polished Stone Axe) प्रमुख है (चित्र ३९)। इसको बनाने के लिए प्रस्तर-खण्ड के एक सिरे को घिसकर धारदार बनाया जाता था और दूसरी ओर उसमें लकड़ी या

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सींग की मूठ लगा दी जाती थी। इस प्रकार का हथियार पूर्व-पाषाणकाल में अज्ञात था। पुराने पुरातत्त्ववेत्ता इसे नव-पाषाणकाल का प्रतीक मानते थे। इससे मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त हो गई कि वह वनों को काट सके और लकड़ी को चीर सके। इससे **काष्ठकला** (Carpentry) का विकास हुआ। अब मनुष्य लकड़ी का उपयोग नाव, मकान और अन्य वस्तुएँ बनाने में करने लगा। कुल्हाड़ी

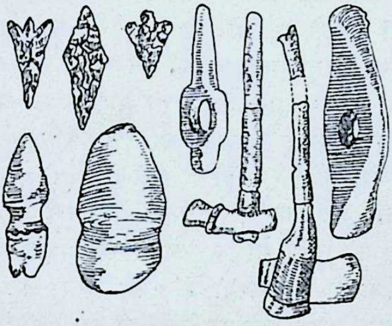

चित्र ३९ : नव-पाषाणकालीन पॉलिशदार उपकरण

ही परिवर्तित रूप में युद्धों में काम आने वाली **गदा, परशु** और **मूंगरी** बनी। गदाएँ पश्चिमी एशिया में गेंदाकार और उत्तरी अफ्रीका तथा यूरोप में तश्तरी के आकार की बनती थी। युद्धों में गदाओं के साथ **भाले** और **धनुष-बाण** का प्रयोग चलता रहा। भालों और तीरों के पाषाण-निर्मित सिरे सर्वत्र प्रचुरता से मिलते हैं (चित्र ३९)।

अन्य उपकरण—नव-पाषाणकालीन मानव का बौद्धिक स्तर पूर्व-पाषाण-कालीन मानव से बहुत ऊँचा था। उसने अपने पूर्वजों की भाँति पाषाण, सींग, अस्थि और हाथी दाँत इत्यादि से छेनी, आरी, हार्पून, सुई, पिन, सुआ, कुदाली, कंघे, मनके और चाकू इत्यादि का निर्माण ही नहीं किया वरन् अपनी बुद्धि का प्रयोग करके अन्यान्य औज़ार और हथियार भी बनाये। उसने ऊपर चढ़ने के लिए **सीढ़ी** बनाई (चित्र ३४, पृ० ६६), झीलों तथा नदियों को पार करने के लिए **नाव का** (चित्र ३४, पृ० ६६) आविष्कार किया। फसल काटने के लिए **हंसिया** (चित्र ३५, ४-५), सूत कातने के लिए **तकली** और **चर्खे** तथा बुनने के लिए **कर्घे** का निर्माण किया। वह सम्भवतः मिट्टी और लकड़ी के **ढोल भी** बनाता था जिन पर पशुओं की खाल चढ़ी होती थी। रीड की शाखों से **सीटियां** बनाने की कला भी उसे ज्ञात थी।

नवीन आविष्कारों का प्रभाव

जनसंख्या में वृद्धि—ऊपर हमने नव-पाषाणकाल में किये गये जिन आविष्कारों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

का विवेचन किया है, उन्होंने मानव जीवन में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। पूर्व-पाषाण काल में, जो कई लाख वर्ष तक चला मनुष्य सदैव प्रकृति पर निर्भर रहा। वह केवल उन्हीं पशुओं का शिकार कर सकता था जो उसे वनों में मिल जाते थे और उन्हीं फलों और कन्द-मूलों का संग्रह कर सकता था जो वन्यावस्था में उत्पन्न होते थे। इससे दो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती थीं। एक तो जन-संख्या उससे अधिक नहीं बढ़ पाती थी, जितनी की उदरपूर्ति उपलब्ध वन्य पशुओं और फल मूलों से हो सकती थी। दूसरे, यदि किसी प्रदेश में किसी समय जलवायु में परिवर्तन हो जाता था और उस जलवायु में पोषित होने वाले पशु और फलमूल विलुप्त हो जाते थे तो वहाँ के मानव समूहों को अपना अस्तित्व बनाये रखना असम्भव हो जाता था। मैग्डेलेनियनों के साथ, जो पूर्व-पाषाणकाल की सर्वाधिक सुसंस्कृत जाति थी, यही हुआ (पृ०६१)। नव-पाषाणकाल में मनुष्य ने प्रथम बार यह ज्ञान प्राप्त किया कि किस प्रकार कृषि और पशु-पालन के द्वारा प्रकृति को उससे अधिक खाद्य-सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य किया जा सकता है जितनी वन्यावस्था में उत्पन्न होती थी। अब किसी ग्राम के निवासियों को जनसंख्या बढ़ जाने पर केवल दो-चार अतिरिक्त खेतों में फ़सल पैदा करनी पड़ती या पालित पशुओं की संख्या बढ़ानी होती थी। इस व्यवस्था की सफलता का सबसे सबल प्रमाण नव-पाषाणकाल में जनसंख्या में वृद्धि होना है। इस काल के मानव समूह पूर्व-पाषाणकाल और मध्य-पाषाणकाल के मानव समूहों से बड़े और संख्या में अधिक थे। दूसरे, इसकाल में मानव का निवास उन प्रदेशों में भी दिखाई देता है जहाँ पूर्व-पाषाणकाल में या तो उसका अस्तित्व बिल्कुल न था और यदि था तो बहुत कम संख्या में। तीसरे, पूर्व-पाषाण काल के प्रस्तरित मानव-अवशेषों की संख्या कुछ ही सौ है जबकि नव-पाषाण-काल के अवशेष सहस्रों की संख्या में उपलब्ध होते हैं। नव-पाषाणकाल में जन-संख्या में वृद्धि होने में एक और तथ्य से सहायता मिली। पूर्व-पाषाणकाल में वच्चे आर्थिक दृष्टि से भार थे। वे शिकार में तो सहायता दे नहीं सकते थे, उल्टे अपनी उदरपूर्ति के लिए भोजन की मांग करते थे। नव-पाषाणकाल में **बच्चों का होना लाभप्रद** हो गया। वे पशुओं को चरागाहों में ले जा सकते थे, खेतों की देखभाल कर सकते थे और अन्य कई प्रकार से परिवार की आर्थिक गति-विधि में हाथ बँटा सकते थे।

स्थायी जीवन का प्रारम्भ—बहुधा यह विश्वास किया जाता है कि पूर्व-पाषाणकाल में मनुष्य शिकार की खोज में घूमता-फिरता रहने के कारण खाना-वदोश(यायावर) था, परन्तु नव-पाषाणकाल में कृषि-कर्म प्रारम्भ करते ही स्थायी रूप से घर बनाकर रहने लगा। यह विश्वास भ्रामक है। आखेट का यायावर होने से और कृषि-कर्म का स्थायी जीवन व्यतीत करने से कोई निश्चित सम्बन्ध

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नहीं है। मैग्डेलेनियन शिकारी थे, परन्तु निश्चित रूप से कई सन्ततियों तक एक ही गुफा में निवास करते रहते थे। दूसरी ओर नव-पाषाणकाल में, कम-से-कम उन प्रदेशों में, जहाँ भूमि की उर्वरता दो तीन फ़सल के बाद कम हो जाती थी मनुष्य को कृषि-कर्म करते हुए भी यायावर जीवन व्यतीत करना पड़ता था। फिर भी यह सत्य है कि उन प्रदेशों में, जहाँ की भूमि की उर्वरता प्रतिवर्ष बाढ़ आने के कारण सदैव बनी रहती थी और जहाँ मनुष्य ने खाद देकर उर्वरता लौटाने की विधि ढूंढ़ निकाली थी, वहाँ वह घर बनाकर स्थायी जीवन व्यतीत कर सकता था और करता था।

मकानों के प्रकार—पूर्व-पाषाणकालीन मानव घर बनाना नहीं जानता था। उसका आश्रय-स्थान गुफाएँ थीं। लेकिन नव-पाषाणकालीन मानव ने सीढ़ी, घिरनी (Pulley) और चूल (Hinge) इत्यादि का आविष्कार कर लिया था। इससे उसे रहने के लिए स्थायी मकान बनाने में बहुत सहायता मिली। मिश्र में मकान बनाने में रीड (नरकुल) का प्रयोग होता था (चित्र ४०)। पश्चिमी एशिया और यूरोप में घर प्रारम्भ में **मिट्टी और टट्टर** तथा बाद में **कच्ची ईंटों** के बनाये जाते थे। ये बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते थे। **स्वीट्ज़रलैण्ड में झीलों पर** बनाये गये मकान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं (चित्र ३४, पृ० ६६)। इन मकानों के अवशेष १८५४ ई० में, जब असाधारण गर्मी पड़ने के कारण झीलों का पानी बहुत सूख गया, प्रकाश में आये। ये मकान लकड़ी के लट्ठों को झील के पानी में गाड़ कर बनाये गये थे। इनमें आने-जाने के लिए सीढ़ियों का प्रबन्ध था। इनकी दीवारों को टट्टर पर मिट्टी का प्लास्टर करके और छत को भूसे, छाल और रीड (नरकुल) से बनाया गया था। इसके निर्माता निश्चित रूप से कुशल बढ़ई रहे होंगे। ऐसे जलगृह फ्रांस, स्कॉटलैण्ड, आयरलैण्ड, इटली, रूस, दक्षिणी और उत्तरी अमरीका तथा भारत में भी प्राप्त हुए हैं। आजकल भी जावा, सुमात्रा और न्यूगिनी में इनका प्रचलन है। सुरक्षा और सफाई की दृष्टि से निश्चित रूप से ये मकान बहुत उत्तम थे।

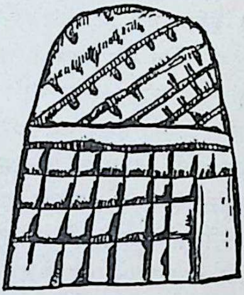

चित्र ४० : प्रागैतिहासिक मिश्र की रीड की एक झोपड़ी का चित्र

सामूहिक जीवन

ग्रामों की योजना—नव-पाषाणकालीन मानव छोटे-छोटे ग्रामों में रहते थे। इनका क्षेत्रफल प्रायः डेढ़ एकड़ से दस एकड़ तक होता था। जेरिको ग्राम

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(प्रथम स्तर) का क्षेत्रफल ८ एकड़ था। एक ग्राम में साधारणतः आठ-दस से लेकर तीस-पैंतीस तक घर होते थे। इनके निवासियों को **सड़कें** और **गलियाँ** मिल-जुलकर बनानी पड़ती थीं। बहुधा ग्राम को सुरक्षा की दृष्टि से **खाई** या **चहारदिवारी** से घेर दिया जाता था। जेरिको ग्राम की खाई २७ फुट चौड़ी और ५ फुट गहरी थी। खाइयों का निर्माण भी गाँव के व्यक्ति सामूहिक रूप से करते होंगे। मकान, सड़कों और गलियों के दोनों ओर व्यवस्थित योजना के अनुसार बनाये जाते थे। यह भी उनकी सामाजिक-जीवन की विकसित अवस्था का प्रमाण है।

स्त्रियों और पुरुषों में श्रम-विभाजन—नव-पाषाणकालीन समाज में स्त्रियों और पुरुषों में श्रम-विभाजन (Division of Labour) हो गया था। जैसा कि हमने देखा है, इस काल के अधिकांश आविष्कार **स्त्रियों** ने किये थे। उन्हीं को कृषि-कर्म, मृद्भाण्ड कला, कताई और बुनाई के आविष्कारों का श्रेय प्राप्त है। इसलिये यह अनुमान किया जाता है कि उन्हें अधिकांश पारिवारिक कार्यों को स्वयं करना होता था। उन पर खेत जोतने, आटा पीसने, खाना बनाने, सूत कातने, कपड़ा बुनने तथा आभूषण और बरतन इत्यादि बनाने का उत्तरदायित्व था। **पुरुष** खेती के काम में स्त्रियों की सहायता करते थे तथा पशुओं का पालन और शिकार करते थे। औज़ार और हथियार भी वही बनाते थे। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक कार्य करना पड़ता था। परन्तु इसके बदले में वे सामूहिक जीवन में प्रमुख भाग लेती थीं। समाज की व्यवस्था **मातृसत्तात्मक** (Matriarchal) थी। विशेषतः जिन समूहों में कृषि-कर्म प्रमुख उद्यम था, स्त्रियों को समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। परन्तु जिन स्थानों पर पशुपालन प्रमुख उद्यम था, वहाँ पुरुषों को अधिक सत्ता मिली हुई थी।

परिवारों और ग्रामों की आत्म-निर्भरता—स्त्रियों और पुरुषों में श्रम-विभाजन हो जाने पर भी समाज में सम्मिलित रूप से औद्योगिक विशिष्टीकरण (Specialisation of Industries) नहीं हो पाया था। प्रत्येक **परिवार** को आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु, खाद्य-सामग्री, मृद्भाण्ड, कपड़ा, औज़ार, हथियार इत्यादि स्वयं उत्पन्न करनी या बनानी होती थी। परिवार के समान **गाँव भी आत्म-निर्भर** होते थे। गाँव के सब व्यक्तियों को आवश्यक खाद्य-सामग्री तथा पाषाण-खण्ड, लकड़ी और अन्य वस्तुएँ स्वयं जुटानी पड़ती थीं। गावों की आत्म-निर्भरता और विशिष्टीकरण का अभाव नव-पाषाणकालीन समाज की आर्थिक-व्यवस्था की विशेषता है। इसका प्रमुख कारण था तत्कालीन युग में **यातायात** के साधनों का अभाव। गाड़ियों के अभाव में स्त्रियाँ माल ढोने का कष्टकर कार्य करती थीं इसलिये एक गाँव से दूसरे गाँव को माल भेजना आसान कार्य नहीं था। दूसरे, नव-पाषाणकालीन ग्राम बहुधा घने जंगलों, नखलिस्तानों या पहाड़ों की घाटियों में अवस्थित थे। इसलिये उनका

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आवश्यक वस्तुओं के लिये पराश्रित रहना असम्भव था। परन्तु आत्मनिर्भरता का अर्थ **पारस्परिक-सम्पर्क** का अभाव नहीं है। नव-पाषाणकालीन संस्कृति के मूल तत्त्वों की समस्त विश्व में समरूपता और मेडीट्रेनियन समुद्र से प्राप्त होने वाली कौड़ियों का मध्य यूरोप में प्रयोग इसका प्रमाण हैं। परन्तु यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि इस प्रकार का सम्पर्क अथवा आदान-प्रदान उनकी आर्थिक व्यवस्था का आवश्यक अंग नहीं था। इससे तत्कालीन ग्रामों की आत्म-निर्भरता में कोई कमी नहीं आती।

सामाजिक संगठन—नव-पाषाणकाल में सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने वाली शक्ति क्या थी, यह कहना बड़ा कठिन है। सम्भवतः उनकी सामाजिक-संगठन की इकाई **'क़बीला'** था और हर क़बीले का एक **चिह्न** (Totem) होता था, जिसे क़बीले के सदस्य अपना आदि-पूर्वज मानते थे। मिश्र में जब नव-पाषाण-कालीन ग्राम, कांस्यकाल के प्रारम्भ में, नगरों में परिणत होते हैं तो उनके नाम हाथी या बाज़ जैसे किसी पशु या पक्षी के नाम पर रखे हुये मिलते हैं। यह अनुमान करना असंगत नहीं है कि नव-पाषाणकाल में हाथी और बाज़ उन ग्रामों के क़बीलों के टॉटेम (Totem) रहे होंगे। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इस युग में **'राजा'** भी अस्तित्व में आने लगे थे। कुछ स्थानों पर साधारण मकानों के बीच में एक बड़ा मकान मिला है जो वहाँ के राजा का महल हो सकता है, परन्तु इसे निश्चय-पर्वक कहना असम्भव है। हो सकता है कि ये बड़े मकान उन गाँवों के 'पंचायत-घर' मात्र हों।

कला और धर्म

भूमि की उर्वरता से सम्बन्धित धार्मिक-विश्वास—मृद्भाण्डों के अतिरिक्त नव-पाषाणकाल की कलाकृतियाँ बहुत थोड़ी हैं। पूर्व-पाषाणकाल के गुहा चित्रों की तुलना में रखी जा सकने वाली कृतियों का तो सर्वथा अभाव है। परन्तु मिश्र, सीरिया, ईरान, दक्षिण-पूर्वी यूरोप और मेडीट्रेनियन प्रदेश से मिट्टी, पत्थर और अस्थियों की **नारी-मूर्तियाँ** प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ मातृ-शक्ति-सम्प्रदाय से सम्बन्धित हो सकती हैं। शायद उनका विश्वास था कि पृथिवी, जिसके वक्ष से अन्न उत्पन्न होता है, नारी के समान है। उसे भेंट देकर तथा पूजकर सन्तुष्ट किया जा सकता है। सम्भवतः उनका यह भी विश्वास था कि उसे तन्त्र-मन्त्र और सादृश्यमूलक जादू (Sympathetic magic) से वश में किया जा सकता है। इसलिए वे उसका मूर्तियों में नारी-रूप में चित्रण करते थे। बहुत से प्रदेशों में उत्पादन-प्रक्रिया में पुरुष पर अधिक बल दिया जाता था। इसका प्रमाण अनातोलिया, बल्कान प्रदेश और इंगलैण्ड से प्राप्त मिट्टी और पाषाण की शिश्न मूर्तियाँ हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उपर्युक्त मत का समर्थन एक और तथ्य से भी होता है। प्रारम्भिक सभ्यताओं में, नव-पाषाणकाल के फौरन बाद, बहुधा एक **कृषि-नाटक** (Fertility Drama) खेला जाता था, जिसमें एक राजा और रानी का 'विवाह' होता था। उनका 'औपचारिक सहवास' (Ceremonial Union of Sexes) प्रकृति की उर्वरता और अन्न की उत्पत्ति का प्रतीक और प्रेरक माना जाता था। इसमें प्रधान पात्र 'अन्नदेव' (Corn King) होता था। जिस प्रकार अन्नोत्पादन में पहले बीज 'मरता' है अर्थात उसे भूमि में गाड़ दिया जाता है, इसी प्रकार इस नाटक में 'राजा' को 'मरना' होता था। उसके बाद बीज से जिस प्रकार नया अन्न उत्पन्न होता है, उसी प्रकार नये 'राजा' का 'आविर्भाव' होता था। यह सर्वथा सम्भव है इन नाटकों का विकास नव-पाषाणकाल में पश्चिमी एशिया और पूर्वी मेडीट्रेनियन-प्रदेश की जातियों द्वारा बीज बोने के अवसर पर दी जाने वाली **नरबलि की प्रथा** से हुआ हो। फ्रेज़र के अनुसार कृषि-कर्म के आदिकाल में बीज बोने के समय नरबलि देने की प्रथा लगभग सभी स्थानों पर प्रचलित थी।

मृतक-संस्कार और बृहत्पाषाण—अधिकांश नव-पाषाणकालीन समूह अपने मृतकों को **कब्रिस्तानों** या **घरों में** गाड़ते थे और उनके साथ मृद्भाण्ड, हथियार और खाद्य-सामग्री रख देते थे।[1] वे इस संस्कार में पूर्व-पाषाणकालीन मानवों से अधिक सावधानी बरतते थे। सम्भवतः उनका विश्वास था कि अन्नोत्पत्ति का मृतकों से कुछ सम्बन्ध होता है। मेडीट्रेनियन प्रदेश में मृतक के लिये उसके **मकान का भूमिगत लघु प्रतिरूप** बनाया जाता था। उत्तर और पश्चिमी यूरोप में मृतकों के प्रति आदर प्रकट करने के लिए स्मारक के रूप में **मेगेलिथ या बृहत् पाषाण** (Megaliths या Great stones) खड़े किये जाते थे (चित्र ४१, ४२), विशेषतः स्केन्डीनेविया, ब्रिटन और दक्षिणी इंगलैण्ड में। इनके बनाने में निश्चितरूप से भारी श्रम करना पड़ता होगा। यूरोप में पाषाण-समाधियों का सबसे प्राचीन रूप **डॉलमेन** (Dolmen या Table Rock) कहलाता है। इसमें कई पाषाण स्तम्भों पर एक समतल शिला उसी प्रकार रख दी जाती थी, जिस प्रकार मेज़ के चारों पायों पर तख्ता रखा होता है; इस प्रकार बने पाषाण-कक्ष में अस्थि-अवशेष रख दिये जाते थे। बहुधा डॉलमेन को मिट्टी के ढेर से, जिसे **टमलस्** (Tumlus) कहा जाता है, ढक दिया जाता था। टमलस् और डॉलमेन को सम्मिलित रूप से **बरो** (Barrow) कहा जाता है। ब्रिटन (Br ton) में बहुधा एक ही पाषाण-स्तम्भ खड़ा किया जाता था। इसे मोनोलिथ (Monolith) या **मेनहिर** (Merhir या Long stone) कहते हैं। ये

१. उत्तरी इटली में बहुत सी गुफाओं में मृतकों की अस्थियों के समीप खण्डित पाषाणोंपकरण मिले हैं। इन उपकरणों को जानबूझकर तोड़ा गया है। सम्भवतः उनका विश्वास था कि इस प्रकार तोड़ने से उपकरण 'मर' जाते हैं और उनकी आत्मा मृत व्यक्ति के साथ चली जाती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

छोटे और बड़े, सादे और चित्रित सभी प्रकार के मिलते हैं (चित्र ४०)। ये उसी प्रकार के पाषाण हैं जैसे आजकल समाधियों पर स्मारक-रूप में खड़े किये जाते हैं। अन्तर केवल इतना है कि नव-पाषाणकालीन मानव उनमें आत्मा का निवास मानते थे। मेनहिरों को बहुधा पंक्ति-बद्ध रूप में भी खड़ा किया जाता था। उस अवस्था में इन्हें **एलायनमेन्ट** (Alignment) कहते हैं। जिन मेनहिरों को विशिष्ट धार्मिक उत्सव मनाने के लिए पाषाण-खण्डों के घेरे में स्थापित किया गया है, उन्हें **क्रोमलेच्** (Cromlech) कहा जाता है।

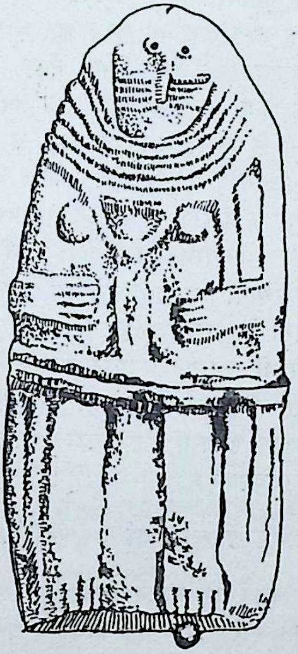

चित्र ४१ : नव-पाषाणकाल का एक चित्रित मेनहिर

जादू-टोना—नव-पाषाणकालीन जातियां **जादू-टोने** में भी विश्वास करती थीं। मेरिम्द में पाषाण की लघु कुल्हाड़ी मिली है जिसमें छेद बना हुआ है। यह गले में **ताबीज़** के रूप में पहिनी जाती होगी। उनका यह विश्वास रहा होगा कि इस प्रकार लघु अस्त्र-शस्त्रों को ताबीज रूप में पहिनने से उनकी अन्तःशक्ति पहिनने वाले को मिल जाती है।

ज्ञान-विज्ञान

नव-पाषाणकालीन मानव का ज्ञान-विज्ञान पूर्व-पाषाणकालीन मानव से बहुत

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समुन्नत था। शताब्दियों के अनुभवों और प्रयोगों द्वारा उन्हें बहुत सी नई बातें मालूम हो गई थीं। मिट्टी पकाने का **रसायन-शास्त्र**, खाना पकाने का **जीव-रसायन-शास्त्र** तथा बहुत सी वस्तुओं के उत्पादन के **कृषि-शास्त्र** से अब वे परिचित हो गये थे। उनको **शरीर की संरचना का** भी थोड़ा बहुत ज्ञान था, क्योंकि कुछ अस्थियों में ऐसे चिह्न मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि उन्हें टूटने के बाद जोड़ा गया है। कृषि का जलवायु और ऋतुओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इनका पूर्व ज्ञान प्राप्त करने में सूर्य, चाँद और सितारों से बहुत सहायता मिलती है। नव-पाषाणकाल के मनुष्य ने इस दिशा में पग उठाना आरम्भ कर दिया था। उदाहरण के लिए मिश्र के निवासी नव-पाषाणकाल के अन्त तक यह खोज कर चुके थे कि सीरियस नक्षत्र (Sirius) उसी समय निकलता है, जिस समय नील नदी में बाढ़ आती है। कालान्तर में यह विश्वास किया जाने लगा कि नील नदी में बाढ़ सीरियस नक्षत्र के कारण आती है। इसी से मिलते-जुलते अनुभवों से यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि सितारे मनुष्य की गतिविधि को नियन्त्रित करते हैं। यह **ज्योतिष** का मूल सिद्धान्त है। ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ में ऐसे विचार यूरोप और एशिया में मिलते हैं। सम्भवतः इनका बीज नव-पाषाणकाल में पड़ा। श्नीदर नामक विद्वान् का तो यह विश्वास है कि कुछ स्थानों पर मेगेलिथों का क्रम नक्षत्रों की गतिविधि के अनुसार निश्चित किया गया है। यदि तत्कालीन युग में ज्योतिष और **खगोल-विद्या** की इतनी प्रगति हो चुकी थी, तो यह अनुमान करना भी असंगत न होगा कि सूर्य, चांद और सितारों से सम्बन्धित **आख्यान**, जो ऐतिहासिक युग के उषःकाल में प्रचलित थे, नव-पाषाण काल में जन्में होंगे। परन्तु इन सब अनुमानों को प्रमाणित करना ज्ञान की वर्तमान अवस्था में असम्भव है।

पाषाणकालीन मानव की उपलब्धियाँ

नव-पाषाणकाल के अन्त तक मानव सभ्यता के लगभग सभी आधार-स्तम्भों का निर्माण हो चुका था। अग्नि, आवश्यक हथियार और औज़ार, मृद्भाण्ड, कृषि, पशुपालन, वस्त्र और मकान इत्यादि सभी वस्तुएँ जो आज भी मनुष्य के लिए अपरिहार्य हैं, अस्तित्व में आ चुकी थीं। मैग्डेलेनियन काल में मनुष्य कला के क्षेत्र में भी सफलतापूर्वक पदार्पण कर चुका था। लिपि (Script), धातु (Metal) तथा राज्य (State) को छोड़कर, जिनका जन्म धातुकाल में हुआ, मनुष्य ने वे सभी आविष्कार कर लिये थे जिनके आधार पर मानव-सभ्यता के भव्य भवन का निर्माण किया जा सका। आर्थिक दृष्टि से भी नव-पाषाणकालीन क्रान्ति सफल रही। कृषि और पशुपालन के द्वारा मनुष्य ने प्रकृति को काफी सीमा तक अपने नियन्त्रण में, कर लिया। वस्तुतः आधुनिक काल में औद्योगिक-क्रान्ति को छोड़कर, मानव जीवन में कोई ऐसी उथल-पुथल नहीं हो पायी है जिसकी तुलना नव-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पाषाणकालीन क्रान्ति से की जा सके। एक प्रकार से इसे मानव सभ्यता की भावी प्रगति की आधार-शिला कहा जा सकता है।

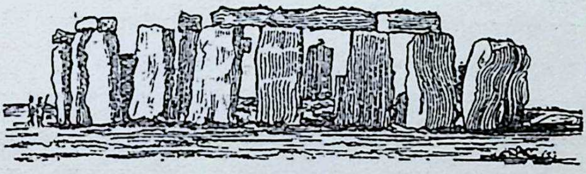

ऊपर दिया गया चित्र इंगलैण्ड के स्टोनहेन्ज नामक स्थान से प्राप्त 'बृहत्पाषाण' का है। यहाँ पाषाण-खण्डों से १०० फुट व्यास का एक घेरा निर्मित किया गया है। यह एक गली द्वारा पास ही स्थित एक नव-पाषाणयुगीन ग्राम से सम्बद्ध है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

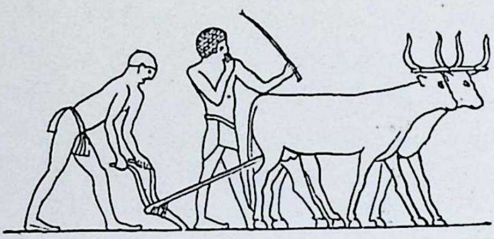

९

ताम्र-प्रस्तरकाल

नव-पाषाणकालीन आर्थिक-व्यवस्था के दोष और ताम्रकालीन आविष्कार

नव-पाषाणकालीन व्यवस्था के दोष—नव-पाषाणकालीन आर्थिक-व्यवस्था कम-से-कम तात्कालिक दृष्टि से पूर्णतः सफल रही। मनुष्य, जो पूर्व-पाषाण-काल में उदरपूर्ति के लिए प्रकृति की कृपा पर निर्भर था, अब कृषि और पशु-पालन के द्वारा आवश्यक खाद्य-सामग्री स्वयं उत्पन्न करने लगा। परन्तु दीर्घकालिक दृष्टि से इस व्यवस्था में **दो प्रमुख दोष** थे। एक, इससे बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या स्थायी रूप से हल नहीं हो पायी। उस काल में इस समस्या का एक-मात्र हल खेती के लिए नयी भूमि और पशुओं के लिए नये चरागाह ढूँढना था। प्रारम्भ में यह कार्य अत्यन्त सरल था। जब किसी ग्राम की जनसंख्या बढ़ जाती थी तो वहाँ के निवासियों का एक भाग पड़ौस में नया ग्राम बसा लेता था या नये चरागाह ढूढ़ लेता था। लेकिन भूमि का विस्तार सीमित है। एक समय ऐसा आया जब नये खेत और चरागाह मिलने बन्द हो गये। कुछ जातियों ने इस कठिनाई को दूर करने के लिए अन्य जातियों के खेतों और चरागाहों को बलपूर्वक छीनना प्रारम्भ किया। परन्तु यह स्पष्ट है कि पारस्परिक छीना-झपटी

ऊपर दिये हुये चित्र में, जो मिश्र के पिरेमिड युग के एक सामन्त की समाधि से लिया गया है, कृषकों को हल चलाते हुये दिखाया गया है। द्रष्टव्य है कि जुआ (Yoke) बैलों के कन्धों के बजाय सींगों पर रखा हुआ है। इस प्रकार के हल का आविष्कार उस युग में प्रचलित कुदालियों से हुआ होगा (चि० ४५, पृ० ६२)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

से बढ़ती हुई जनसंख्या और सीमित भूमि की समस्या हल नहीं हो सकती थी। दूसरी समस्या परिवारों और ग्रामों की आत्म-निर्भरता के कारण उत्पन्न हुई। ग्रामों में पारस्परिक सम्बन्ध के अभाव तथा कृषि-सम्बन्धी ज्ञान और उपकरणों की आदिम अवस्था के कारण नव-पाषाणकालीन मानव अधिक से अधिक उतनी खाद्य-सामग्री उत्पन्न करते थे और कर सकते थे जितनी उनके परिवार के लिये यथेष्ट होती थी। वे किसी समय भी बाह्य सहायता की अपेक्षा नहीं कर सकते थे। इसका परिणाम यह होता था कि किसी वर्ष भूकम्प, अनावृष्टि, अतिवृष्टि या तूफान जैसे प्राकृतिक संकट आने पर वे नितान्त असहाय हो जाते थे। अगर ये प्रकोप दो तीन वर्ष चल जाते थे तो उनका अन्त ही हो जाता था।

नये आविष्कार—इन दोनों समस्याओं को सुलझाने के लिये उतनी ही भूमि में अधिक खाद्य-सामग्री उत्पन्न करना और नव-पाषाणकाल के बिखरे हुए ग्रामों में पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक था, जिससे संकट पड़ने पर एक ग्राम दूसरे की सहायता ले सकें। नव-पाषाणकाल के पश्चात् मनुष्य ने अनेकानेक आविष्कारों द्वारा इस कार्य में सफलता पाने का प्रयास किया। सम्भवत: विश्व-इतिहास में ५००० ई० पू० से ३००० ई० पू० तक जितने महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुए उतने आधुनिक वैज्ञानिक युग को छोड़कर कभी नहीं हुए। गॉर्डन चाइल्ड के अनुसार इनमें निम्नलिखित **१६ आविष्कार** विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण हैं: ताम्र का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिए प्रयोग; पशुओं का भार वाहक के रूप में प्रयोग; पालदार नाव, पहियेदार गाड़ी और हल का आविष्कार; नहरों द्वारा कृत्रिम सिंचाई-व्यवस्था; फलों की खेती; शराब बनाने का आविष्कार; काँस्य का उत्पादन और प्रयोग; ईंट और मेहराब बनाने तथा काचन-क्रिया (Glazing) की विधि की खोज; सौर-पंचाङ्ग, मुद्रा, लिपि तथा अंकों (Numeral notation) का आविष्कार। पुरातात्त्विक दृष्टि से इनमें ताम्र का प्रयोग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिये पुरातत्त्ववेत्ता इस काल को **ताम्रकाल** कहते हैं।

ताम्र, कांस्य और नगर-क्रान्ति—ताम्रकाल में हल के प्रयोग के कारण उत्पादन बढ़ जाता है तथा बढ़ती हुई आबादी की समस्या कुछ समय के लिये सुलझ जाती है। इसलिये नव-पाषाणकालीन ग्राम शनैः शनैः बड़े हो जाते हैं; परन्तु बड़े होने के साथ-ही-साथ उनकी आत्म-निर्भरता समाप्त होने लगती है और सामाजिक संगठन में कुछ जटिलता आने लगती है। पहियेदार गाड़ियों और पशुओं का भार-वाहक के रूप में प्रयोग होने के कारण उनका पृथकत्व टूटने लगता है। परन्तु इतना होने पर भी ताम्र के साथ-साथ पाषाणोपकरणों का प्रयोग चलता रहता है और ग्रामों का आकार बढ़ जाने पर भी वे नगरों के रूप में परिणत नहीं होते। इस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

युग में ताम्र और पाषाणोपकरणों का प्रयोग साथ-साथ होता रहा इसलिये कभी-कभी इसे ताम्र-पाषाण युग (Chalcholithic Age) भी कहा जाता है। ताम्र-काल के अन्त में, अर्थात चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० में, मनुष्य खाद्य-सामग्री की समस्या को हल करने के लिए एक और प्रयोग करता है और वह है नदियों की घाटियों की उर्वर भूमि को कृषि के योग्य बनाना । वह इन घाटियों में स्थित दलदलों को सुखाता है और कृत्रिम सिंचाई की व्यवस्था के लिये नहरें तथा बाँध बनाता है। इन कार्यों को छोटे-छोटे ग्रामों के निवासी नहीं कर सकते थे इसलिये मनुष्य को स्वयं को, विशाल समूहों—**नगरों**—में संगठित करना आवश्यक हो जाता है। लगभग इसी समय वह **काँस्य** के उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग की विधि का आविष्कार कर लेता है। दूसरे शब्दों में काँस्यकाल और नगर-सभ्यताओं का उदय साथ-साथ होता है। सुविधा की दृष्टि से हम इस अध्याय में केवल ताम्रकालीन आविष्कारों तथा मानव जीवन पर उनके प्रभावों का अध्ययन करेंगे। काँस्यकाल और नगर-क्रान्ति का अध्ययन अगले अध्याय में किया जाएगा।

ताम्रकालीन उपनिवेश

ताम्रकालीन संस्कृति का उदय-स्थल—ताम्रकाल का प्रादुर्भाव उस विशाल भूभाग में हुआ जो मिश्र और पूर्वी मेडीट्रेनियन प्रदेश से भारत में सिन्धु नदी की घाटी तक विस्तृत है (मानचित्र ३)। इसमें नील नदी की घाटी, एजियन प्रदेश, एशिया माइनर, सीरिया, पेलेस्टाइन, असीरिया, बैबिलोनिया, ईरान, अफ-गानिस्तान तथा उत्तर-पश्चिमी भारत आते हैं। यह प्रदेश अपेक्षाकृत शुष्क है, तथापि ऐतिहासिक युग के पूर्व यहाँ अब से अधिक वर्षा होती थी। इसका बहुत सा भाग पर्वतों और रेगिस्तानों द्वारा घिरा हुआ है परन्तु बीच-बीच में नदियों की **घाटियाँ** और हरे-भरे **नखलिस्तान** हैं। यहीं पर नव-पाषाणकालीन ग्राम-सभ्यता का उदय हुआ था। ताम्रकालीन पुरातात्त्विक अवशेष भी सर्वप्रथम इन्हीं नखलिस्तानों और घाटियों में अवस्थित नव-पाषाणकालीन ग्रामों के ऊपरी स्तरों से प्राप्त होते हैं।

मिश्र के उपनिवेश—सिन्धु प्रदेश के प्रागैतिहासिक युग पर प्रकाश डालने वाले बहुत कम अवशेष प्राप्त हैं, परन्तु ईरान, बैबिलोनिया, असीरिया, सीरिया, पेलेस्टाइन, मिश्र और क्रीट से प्राप्त साक्ष्यों की सहायता से ताम्रकालीन सभ्यता के विकास की प्रमुख अवस्थाओं का अध्ययन किया जा सकता है। मिश्र में ताम्रकाल के प्राचीनतम स्तरों को **बदरियन** (Badarian) और **अम्रतियन** (Amratian) कहा जाता है। इनके निर्माताओं का रहन-सहन नव-पाषाण-कालीन था। वे ताम्र से परिचित थे परन्तु इसको ढालकर उपकरण बनाने की विधि का आविष्कार नहीं कर पाये थे। वे सम्भवतः इस लोक से अधिक परलोक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ताम्र और कांस्यकालीन संस्कृतियों का तिथिक्रम

तिथि	मिश्र	उत्तरी मेसोपोटामिया	सुमेर	ईरान इत्यादि				सिन्धु प्रदेश
	पुरातन राज्य	सारगोनी युग			हिसार तृतीय		अनोतृतीय	झूकर
२००० ? ई० पू०		प्रारम्भिक वंशीय युग	प्रारम्भिक वंशीय युग			सूसा द्वितीय		हड़प्पा
३००० ? ई० पू०	प्राग्वंशीय युग	निनवेही युग					अनोद्वितीय	अमरी
	गरजियन मादियन	गावरा	जम्देतनस्र	सियालक चतुर्थ	हिसार द्वितीय			
			परवर्ती उरुक					
३९०० ? ई० पू०			प्रारम्भिक उरुक		हिसार प्रथम	सूसा प्रथम	अनोप्रथम	
	अम्रतियन	उबैद	परवर्ती उबैद	सियालक तृतीय				
४४०० ? ई० पू०	बदरियन मेरिम्दे		प्रारम्भिक उबैद	सियालक द्वितीय				
	तासियन फायूम	हलफ हसुन्ना जर्मो						
५००० ? ई० पू०			प्रोटो उबैद	सियालक प्रथम				

तालिका ४

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

युग
कभ
का
को
की
को
है।
स्वर
इसी
का
का
ताम्
काँस

ता

भूभ
की
प्रदेश
गानि
तथा
सा
की
सभ्य
नखा
से प्र

वाले
पेलेस्
सभ्य
में त
(An
काली
विधि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

की चिन्ता करते थे। उनकी समाधियों में बहुमूल्य उपकरण और आभूषण मिलते हैं। इनको बनाने के लिये वे विदेशों से बहुमूल्य पाषाणों का आयात करते थे। कालान्तर में इसी प्रवृति के कारण मिश्र में पिरेमिडों का निर्माण हुआ। आगामी संस्कृति में, जिसे पुरातत्त्ववेत्ता **गरजियन** (Gerzean) कहते हैं, ताम्र को ढालकर उपकरण बनाने की विधि का आविष्कार हो जाता है। इस युग में मिश्र के निवासी मेसोपोटामिया के घनिष्ठ सम्पर्क में आये। इस युग की समाधियाँ विशालतर और सुन्दर हैं तथा उनमें मिलने वाले अवशेष भी अधिक मूल्यवान और कलात्मक हैं।

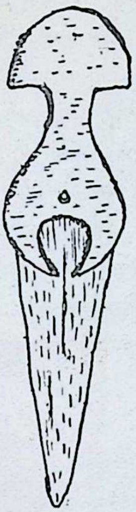

चित्र ४४

पश्चिमी एशिया और ईरान के उपनिवेश—हम देख चुके हैं कि ईरान में सियालक की प्रथम स्तर तथा मेसोपोटामिया में अन्य स्थानों से प्राप्त तत्कालीन अवशेष नव-पाषाणकाल के हैं। **सियालक का द्वितीय** स्तर तथा सीरिया तथा असीरिया के द्वितीय स्तरों के अवशेषों की संस्कृति भी मूलतः नव-पाषाणकाल की है, परन्तु कुछ परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। कौड़ियों, सीपियों और मूल्यवान प्रस्तरों का आयात-निर्यात बढ़ जाता है। मकान बनाने में मिट्टी की कच्ची ईंटों और मृद्भाण्डों के लिए भट्टी का प्रयोग होने लगता है। ताम्र का उपयोग भी प्रारम्भ हो जाता है, परन्तु इसको पिघलाकर और साँचों में ढालकर उपकरण बनाने की विधि अभी तक अज्ञात है। केवल धातु को कूटपीटकर इच्छित रूप देने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस काल में स्त्रियों पुरुषों में ताबीज पहिनने की प्रथा बढ़ जाती है। देवताओं के लिए मंदिर बनवाये जाने लगते हैं। सुमेर में इरिडू नगर में इया का प्राचीनतम मन्दिर सम्भवतः इसी युग का है। पुरातत्त्ववेत्ता इस युग को तैल हलफ (Tell Halaf) के नाम पर **हलफियन** (Halafian) कहते हैं। यह स्थूल रूप से मिश्र की बदरियन संस्कृति का समकालीन माना जा सकता है। अगले युग में, जिसमें **सियालक का तृतीय स्तर** और मेसोपोटामिया तथा सीरिया की **अल उबेद** (al'Ubaid) संस्कृति आती हैं, यद्यपि पाषाण उपकरणों का प्रयोग चलता रहता है, तथापि ताम्र को पिघलाने और ढालकर उपकरण बनाने की कला का आविष्कार हो जाता है। कुम्हार चाक का प्रयोग करने लगते हैं और व्यापारी सम्पत्ति पर अधिकार प्रदर्शित करने के लिए मुद्राओं का। सुमेर में मृद्भाण्ड हाथ से बनाने की प्रथा चलती रहती है, परन्तु देवताओं के पुराने मन्दिरों के स्थान पर बड़े मन्दिर बनाये जाने लगते हैं। अल उबेद संस्कृति मिश्र की अम्रतियन संस्कृति की समकालीन प्रतीत होती है। सम्भवतः इस समय इससे मिलती-जुलती सांस्कृतिक अवस्था एजियन प्रदेश, एशिया माइनर,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथा उत्तर-पश्चिमी भारत में भी चल रही थी। अगले युग में **सियालक का चतुर्थ स्तर** असीरिया की **तेपगावरा** (Tepe Gawra) और सुमेर की **जम्देतनस्र** (Jamdet Nasr) संस्कृतियाँ आती हैं। ये मिश्र की गरजियन संस्कृति की समकालीन मालूम होती हैं। इस युग में ताम्रकालीन ग्राम जिनका आकार नव-पाषाणकालीन ग्रामों से पहले ही काफी बड़ा हो चुका था, धीरे-धीरे छोटे-छोटे क़स्बों और नगरों में परिणत होने लगते हैं। असीरिया के इस काल के क़स्बे बहुत छोटे थे, परन्तु इनके निवासी आग में पकी ईंटों और काँस्य का थोड़ा बहुत प्रयोग करने लगे थे। सियालक चतुर्थ और सुमेर में इस युग में बड़े-बड़े नगर, जिनके निवासी लिपि और काँस्य से परिचित थे तथा जिनकी राजनीतिक अवस्था काफी विकसित हो चुकी थी, अस्तित्व में आ जाते हैं। इन नगरों का उदय किस प्रकार हुआ, इसका अध्ययन हम अगले अध्याय में करेंगे। इसके पूर्व ताम्रकाल के उन आविष्कारों का अध्ययन करना आवश्यक है, जिनके कारण नगर सभ्यता के प्रमुख तत्त्व अस्तित्व में आ सके।

ताम्र का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग

ताम्र का हथियार और औज़ार बनाने के लिये प्रयुक्त होना मानव जीवन में क्रान्तिकारी आविष्कार था। ताम्र का प्रयोग इतना सरल नहीं था जितना पाषाण का। किसी प्रस्तर-खण्ड से हथियार बनाने के लिये उसे केवल एक विशेष विधि से तोड़ना और घिसना होता था परन्तु ताम्र का उपयोग करने के लिये अत्यधिक विज्ञान-कौशल (Technical skill) की आवश्यकता थी। इस पर भी ताम्र एक द्रव्य के रूप में पाषाण की तुलना में बहुत उत्तम था, इसलिये उसका प्रयोग शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया।

ताम्र के गुण—(१) ताम्र एक **लचीली धातु** है। इसे न केवल पाषाण की तरह घिसा जा सकता है वरन् आसानी से मोड़ा भी जा सकता है। इसे हथौड़े से पीटकर इच्छित रूप दिया जा सकता है और चादरें बनाई जा सकती हैं, जिनको काटकर विविधाकार के उपकरण बनाये जा सकते हैं। ताम्र के इस गुण का आविष्कार मिश्र में अम्रतियन और सियालक द्वितीय में हो चुका था।

(२) ताम्र के उपकरणों में पत्थर के उपकरणों के समान **कठोरता** और **तीक्ष्णता** तो होती ही है, साथ ही **स्थायित्व** भी होता है। पकी मिट्टी और पाषाण-हथियारों को एक बार टूटने पर जोड़ा नहीं जा सकता परन्तु ताम्र के उपकरण न तो इस प्रकार टूटते हैं, और यदि खराब हो भी जाते हैं तो उन्हें गलाकर नये उपकरण बनाये जा सकते हैं। थोड़ी बहुत खराबी को पीटकर या रेतकर ठीक किया जा सकता है। ताम्र में पत्थर की कठोरता के साथ-साथ गीली मिट्टी का लचीलापन भी मिलता है। जिस प्रकार गीली मिट्टी के टुकड़ों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

को जोड़ा जा सकता है, उसी प्रकार ताम्र के टुकड़ों को भी। परन्तु ताम्र में इनके अतिरिक्त और बहुत से गुण हैं जो मिट्टी और पत्थर में नहीं पाये जाते। उदाहरणार्थ ताम्र को पिघलाया जा सकता है। उस समय यह मिट्टी की तरह लसलसा ही नहीं वरन् पानी की तरह तरल हो जाता है। अगर तरलावस्था में इसे किसी साँचे में डाल दिया जाय और फिर ठन्डा कर लिया जाय, तो यह उस साँचे का रूप धारण कर लेता है परन्तु इसकी कठोरता लौट आती है। **ढालकर उपकरण बनाना सम्भव** होने से ताम्र से कम-से-कम उतने प्रकार के उपकरण बन सकते हैं जितने प्रकार के साँचे उपलब्ध हों। ढले हुये उपकरणों को पीटकर तथा रेतकर सुधारा जा सकता है। सियालक तृतीय तथा गरजियन संस्कृतियों में ताम्र के इन गुणों से लाभ उठाने की विधि की खोज हो चुकी थी।

(३) जिन स्थानों पर ताम्र विशुद्धावस्था में नहीं मिलता, वहाँ इसे वैज्ञानिक विधियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे बहुत से पाषाण होते हैं जिनको चारकोल के साथ गर्म करने पर ताम्र निकल आता है। सियालक तृतीय और अलउबेद युग में इस विधि का भी आविष्कार हो गया था।

(४) दजला और फरात की घाटियों तथा अन्य ऐसे प्रदेशों में जहाँ पत्थर बाहर से मँगाया जाने के कारण मँहगा पड़ता था, ताम्र के हथियार **पत्थर के हथियारों से सस्ते** पड़ते थे, क्योंकि ताम्र का एक हथियार पत्थर के कई हथियारों के बराबर चलता था। **युद्ध में** ताम्र का हथियार ज्यादा उपयोगी सिद्ध होता था। पत्थर का हथियार किसी समय भी टूट सकता था जबकि ताम्र के हथियार के साथ इस प्रकार का भय नहीं था। इसके अतिरिक्त, जैसा कि हम देख चुके हैं, ताम्र को टिन या सीसा मिलाकर और कठोर किया जा सकता था।

कृषि-कर्म सम्बन्धी आविष्कार

पशुओं से खाल, मांस और दूध इत्यादि की प्राप्ति मनुष्य नव-पाषाणकाल में ही करने लगा था। अब उसने यह विचार किया कि पशुओं से ऐसे बहुत से कार्य लिए जा सकते हैं जिनको करने में उसे स्वयं अत्यधिक श्रम करना पड़ता है। खेत जोतने का काम इनमें सबसे कठिन था। इस काम को अब तक स्त्रियाँ करती थीं। अब मनुष्य ने **जुए** (Yoke) का आविष्कार किया (चित्र ४३, पृ० ८६) जिसमें बैलों को जोतकर **हल** खिचवाया जा सकता था। स्वयं हल का आविष्कार कब हुआ यह कहना कठिन है। प्रारम्भिक हल लकड़ी के बनते थे इसलिये उनके अवशेष प्राप्त नहीं होते। इतना निश्चित है कि ३००० ई० पू० के आसपास इसका प्रयोग मिश्र, मेसोपोटामिया और सम्भवतः भारत में हो रहा था (चित्र ४३)। इसका आविष्कार इस तिथि के कई शताब्दी पहले हो गया होगा। मिश्र में हल का

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विकास सम्भवतः कुदाली से हुआ। कुदाली की मूँठ को दोनों ओर बढ़ाने से काम चलाऊ हल बन सकता था। मिश्र की समाधियों से प्राप्त चित्रों से इसका समर्थन होता है (चित्र ४३, ४५)। हल के आविष्कार से कृषि-कर्म उस रूप में

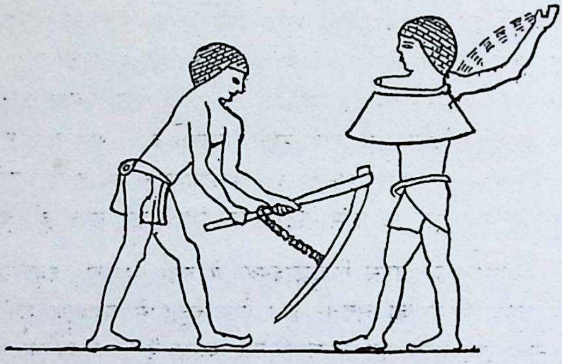

चित्र ४५ : पिरेमिड युग में कुदाल का प्रयोग

आ जाता है जिसमें वह आधुनिक काल में औद्योगीकरण होने के पहले तक रहा। इससे कृषि-कर्म और पशुपालन भी घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हो जाते हैं। अब प्रत्येक किसान को अपने घर में बैल रखने की व्यवस्था करनी पड़ी। इससे खाद के लिए गोबर उपलब्ध होने लगा। इससे भी उपज में वृद्धि हुई। कृषि-कर्म के

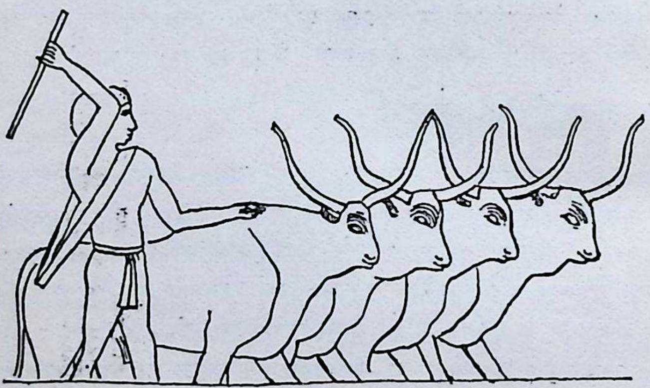

चित्र ४६ : प्राचीन मिश्र में पशुओं को हाँक कर ले जाता हुआ एक कृषक

क्षेत्र में किया गया एक और आविष्कार फलों की खेती से सम्बन्धित है। अभी तक मनुष्य फलों के केवल जंगली रूप से परिचित था। अब उसने खाद्यान्न के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समान फलों का स्वयं उत्पादन करना प्रारम्भ किया। इसका उसके भोजन और सामाजिक जीवन पर काफी प्रभाव पड़ा।

यातायात सम्बन्धी आविष्कार

पशुओं का परिवहन में प्रयोग—कृषि-कर्म में बैलों का हल खींचने में प्रयोग होने का एक अप्रत्यक्ष परन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव यातायात पर पड़ा। अभी तक एक स्थान से दूसरे स्थान को माल ले जाने का कार्य स्वयं मनुष्य, विशेषतः स्त्रियाँ करती थीं। इसके अतिरिक्त वे **स्लेज गाड़ी** का भी, जिसे सम्भवतः कुत्ते खींचते थे, प्रयोग करते थे। जब मनुष्य ने बैलों को हल खींचते देखा तो उसे यह विचार आया कि बैल स्लेज गाड़ी भी खींच सकते हैं। मेसोपोटामिया में स्लेज गाड़ियाँ कम-से-कम २६०० ई० पू० तक प्रयुक्त होती रही। यातायात में पशुओं का भार-वाहक के रूप में भी प्रयोग किया जाता था। सबसे पहला पशु, जिसे यह कार्य दिया गया, बैल न होकर **गधा** था। ३००० ई० पू० के पहले गधे का भारवाहक

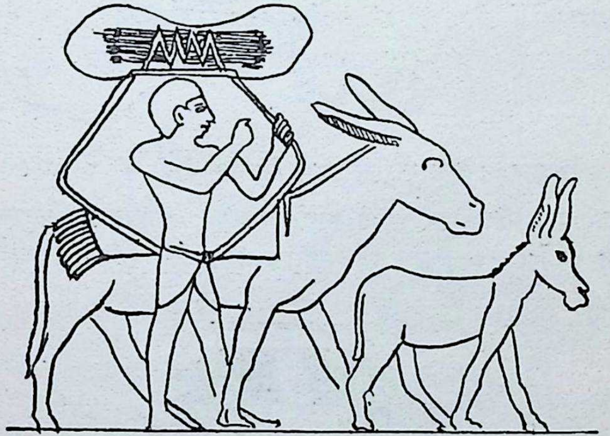

चित्र ४७ : भार ढोकर ले जाता हुआ गधा-पिरेमिड युग के एक चित्र की अनुकृति

के रूप में मिश्र में प्रयोग प्रारम्भ हो गया था (चित्र ४७)। सीरिया और मेसोपोटामिया में भी तीसरी सहस्राब्दी के प्रारम्भ में इसका निश्चित रूप से उपयोग हो रहा था। **घोड़े** का पालन दूध प्राप्त करने के लिए बहुत पहले ही प्रारम्भ हो चुका था। परन्तु घुड़सवारी, गाड़ी खींचने और भार ढोने के लिए इसका प्रयोग २००० ई० पू० के पहले हुआ या नहीं, यह कहना कठिन है। सिन्धु घाटी से २५०० ई० पू० के लगभग घोड़े की काठी (Saddle) की सन्देहास्पद अनुकृतियाँ मिली हैं। ३००० ई० पू० के लगभग सुमेरियन किसी अश्वसम पशु (Equid)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

को रथ में जोड़ते थे, ऐसा कुछ चित्रों से मालूम होता है। फ्रैंकफर्ट ने इस पशु को घोड़ा, वूली ने गधा तथा अन्य कुछ विद्वानों ने खच्चर बताया है। ऐसा ही सन्देह ऊँट के प्रयोग के विषय में भी है।

बैलगाड़ियाँ—यातायात में सबसे क्रान्तिकारी आविष्कार **पहिये** का था। हलफियन युग में पहिये के प्रयोग के निश्चित प्रमाण मिलते हैं। ३००० ई० पू०

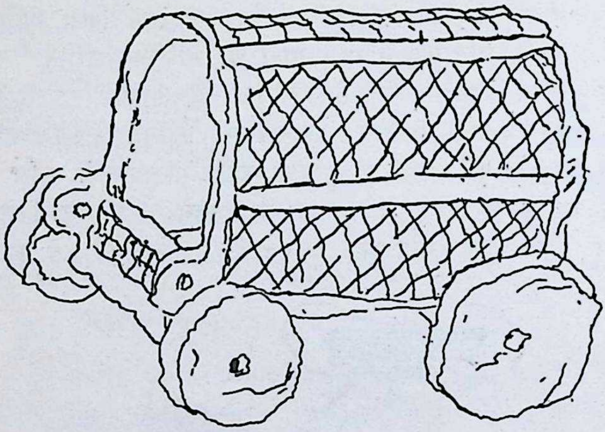

चित्र ४८ : तेपगावरा से प्राप्त खिलौना-गाड़ी की अनुकृति

के लगभग दो और चार पहिये वाली गाड़ियाँ तेपगावरा में प्रयुक्त हो रही थी (चित्र ४८)। २००० ई० पू० तक इस प्रकार की गाड़ियाँ सिन्धु से लेकर

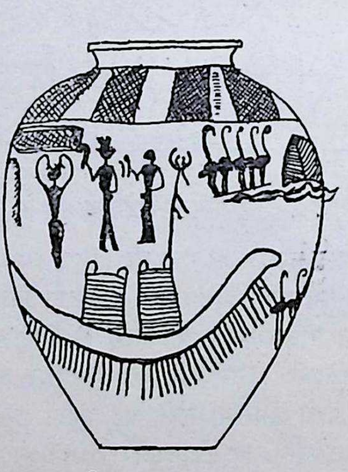

चित्र ४९ : गरजियन युग का एक मृदभाण्ड

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्रीट तक और १००० ई० पू० में चीन से लेकर स्वीडन तक प्रचलित हो गई थीं, परन्तु मिश्र में १६०० ई० पू० के पहले इनका प्रचलन नहीं हो पाया था।

जल-यातायात—३००० ई० पू० तक वायु की सहायता जल-यातायात में ली जाने लगी थी। नव-पाषाणकाल में मनुष्य ने बेड़े और छोटी-छोटी नावें बनाना सीख लिया था। ताम्रकाल में उसने पाल का प्रयोग करना सीखा। गरजियन और अलउबेद के मृद्भाण्डों पर **पालदार नावों** की अनुकृतियाँ इसका निश्चित प्रमाण हैं (चित्र ४६)। तीसरी सहस्राब्दी में पालदार नावों का मिश्र, और पूर्वी मेडीट्रनियन प्रदेश में प्रचुरता से प्रयोग हो रहा था। यह प्रथम अवसर था जब मनुष्य ने किसी भौतिक-शक्ति को चालक-शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया। कालान्तर में यातायात की यह विधि अन्य सब विधियों से सस्ती सिद्ध हुई।

मृद्भाण्ड कला

यातायात में हुई क्रान्ति का प्रभाव एक और उद्यम पर भी पड़ा। वह उद्यम है मृद्भाण्ड बनाने की कला। नव-पाषाणकाल के अन्त तक मनुष्य मृद्भाण्ड हाथ से बनाता था। जब उसने पहिये के आविष्कार का प्रयोग बैलगाड़ी के निर्माण

चित्र ५० : प्राचीन मिश्र में चाक पर वर्तन बनाते हुए कुम्हार

में किया तब उसे यह भी विचार आया कि पहिये की सहायता से वह कम समय में अधिक संख्या में सुन्दरतर मृद्भाण्ड बना सकता है। इस प्रकार कुम्हार का **चाक** (Potters' wheel) अस्तित्व में आया (चित्र ५०)। इसके कारण मृद्भाण्ड कला एक विशिष्ट उद्यम बन जाता है।

नये आविष्कारों के परिणाम

विशिष्ट वर्गों का उदय और आत्म-निर्भरता का अन्त—उपर्युक्त आविष्कारों का सामाजिक और आर्थिक-व्यवस्था पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बहुत प्रभाव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पड़ा। इनके कारण बहुत से वर्ग, जिनके कार्य इतने जटिल थे कि साधारण गृहस्थ उन्हें नहीं कर सकते थे, अस्तित्व में आये। ये वर्ग धीरे-धीरे खाद्यान्न के उत्पादन से दूर हटते गये और अपनी उदरपूर्ति के लिए अपनी विशिष्ट विद्याओं पर निर्भर रहने लगे। दूसरी ओर साधारण कृषक को उनकी विद्या से लाभ उठाने के लिए अतिरिक्त उत्पादन करना पड़ा। इससे व्यक्ति और ग्राम की **आत्मनिर्भरता को धक्का** पहुँचा। उदाहरण के लिए ताम्र के आविष्कार को ही लीजिये। ताम्र के उपकरण बनाने के लिये बहुत-सी वस्तुओं, जैसे ऊँचा तापक्रम उत्पन्न करने के लिये भट्टी, बहुत से पात्र, सँड़सी और साँचे इत्यादि की आवश्यकता पड़ती थी। इनका ज्ञान और ताम्र के बनाने, पिघलाने, और ढालने की विधि तत्कालीन साधारण मनुष्यों के लिए बहुत जटिल थी। पत्थर से ताँबे का निकल आना, ताँबे का पिघलना और फिर विविधाकार उपकरणों के रूप में साँचों में ढल जाना, ये सब बातें उनके लिए जादू के समान थीं। ये कार्य सभी व्यक्ति नहीं कर सकते थे, इसलिए जादूगर-पुजारियों के बाद ताम्र उपकरण बनाने वाले **ठठेरे** (Copper smiths) समाज का दूसरा विशिष्ट वर्ग—धातु-शास्त्र के विशेषज्ञ—बने। उनकी विद्या इतनी जटिल थी कि वे न तो इसे सबको सिखा सकते थे और न सब व्यक्ति इसे सीख ही सकते थे। वे केवल अपने योग्य और प्रिय शिष्यों तथा पुत्रों को अपनी विद्या प्रदान करते थे। उन्हें उदरपूर्ति के लिये स्वयं खाद्य-सामग्री उत्पन्न करने के स्थान पर अपनी विद्या पर निर्भर रहना पड़ता था। दूसरी ओर अन्य व्यक्तियों को उनकी विद्या से लाभ उठाने के लिये—ताम्र उपकरण प्राप्त करने के लिये—अतिरिक्त खाद्य-सामग्री और वस्त्रादि उत्पन्न करने पड़ते थे।

ठठेरों की तरह **खान खोदने वाले** और **पत्थर पिघलाकर ताम्र निकालने** वाले व्यक्तियों का कार्य भी कम आसान नहीं था। कच्चा ताँबा चट्टानों की नसों में मिलता है। खान खोदने वालों के लिए यह आवश्यक था कि वे ऐसी चट्टानों की पहिचान, तोड़ने की विधि और खान खोदने की जटिल विधि से परिचित हों। कच्चे माल को पिघला कर धातु बनाने की रासायनिक-प्रक्रिया भी कठिन थी। इसमें ऊँचे तापमान वाली भट्टी की आवश्यकता पड़ती थी। इसका विशद् ज्ञान भी बहुत थोड़े व्यक्ति प्राप्त कर सकते थे; और जो इस विधि का ज्ञान प्राप्त करते थे वे खाद्योत्पादन में समय नहीं लगा सकते थे। ताम्र सब स्थानों पर नहीं मिलता। यह अधिकतर उन पहाड़ी प्रदेशों में मिलता है जहाँ मनुष्यों का आवास नहीं होता। टिन तो और भी कम स्थानों पर मिलता है। इसलिये ताम्र और काँस्य के प्रयोग का अर्थ था उसे बाहर से मँगाते रहना और इसका अर्थ था व्यापार, और वह भी आवश्यक वस्तु का, विलासिता की वस्तु का नहीं। ज्यों ही किसी समाज ने ताम्र के उपकरणों की आवश्यकता अनुभव की, वह दूसरे समूहों पर निर्भर हो गया।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ठठेरों के बाद दूसरा विशिष्ट वर्ग **कुम्हारों** का था। नव-पाषाणकाल तक प्रत्येक परिवार की स्त्रियाँ आवश्यकता के बर्तन स्वयं बनातीं थीं। अब चाक का आविष्कार हो जाने के कारण एक दिन में कई गुने परन्तु सुन्दरतर मृद्भाण्ड बनाना सम्भव हो गया। परन्तु चाक का प्रयोग करना सभी व्यक्ति नहीं सीख सकते थे। इसलिये अब यह एक वर्ग का ही कार्य हो गया। चाक का सर्वप्रथम प्रयोग सियालक तृतीय में मिलता है। सिन्धु-सभ्यता के निर्माता भी इससे परिचित थे। मिश्र में इसका प्रयोग पहियेदार गाड़ियों के प्रयोग से एक सहस्र वर्ष पूर्व, अर्थात २५०० ई० पू० के लगभग, प्रारम्भ हो गया था (चित्र ५०)। एक और नया विशिष्ट वर्ग **बढ़इयों** का हो सकता है। गाड़ियों और नावों की मांग बढ़ जाने के कारण बढ़ई का पेशा महत्त्वपूर्ण हो गया होगा। परन्तु आजकल भी कृषक बिना बढ़ई बुलाये स्वयं नाव और गाड़ियाँ इत्यादि बना लेते हैं, इसलिये बढ़ई-वर्ग का अस्तित्व सन्देहास्पद हो सकता है।

स्थायी जीवन को प्रोत्साहन—सामाजिक और आर्थिक जीवन में हुये कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तनों का कारण फलों की खेती का अविष्कार था। फलों और खाद्यान्न की खेती में अन्तर है। खाद्यान्न को प्रतिवर्ष बोना और काटना होता है। इसलिये एक वर्ष एक स्थान पर खेती करने के बाद मनुष्य दूसरे वर्ष दूसरे स्थान पर जा सकता है, परन्तु खजूर, जैतून और अंगूर के वृक्षों और लताओं में फल ५-६ वर्ष बाद लगते हैं, परन्तु एक बार लगने के बाद लगातार ७०–८० वर्ष तक मिलते रहते हैं। इसलिये **फलों की खेती** ने मनुष्य को स्थायी जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य कर दिया। दूसरे, अंगूर की खेती से **शराब बनाने की कला** अस्तित्व में आई। हो सकता है इससे पहले भी मनुष्य जौ इत्यादि से शराब बनाता रहा हो। इतना निश्चित है कि ३००० ई० पू० तक शराब सुमेरियन जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान पा चुकी थी।

व्यक्तिगत सम्पत्ति और मुद्राएँ—नये-नये आविष्कारों के कारण मनुष्यों के पास व्यक्तिगत सम्पत्ति बढ़ने लगी। इस पर अपना अधिकार प्रकट करने के लिए वे **मुद्राओं** की छाप लगाने लगे। मुद्राओं का प्रादुर्भाव निश्चित रूप से **ताबीजों** से हुआ। ताबीजों (Amulets) पर बहुधा क़बीले का चिह्न (Totem) या कोई धार्मिक डिज़ायन खोद दिया जाता था। यह विश्वास किया जाता था कि ताबीज़ के पहिनने वाले के पास ताबीज़ के चिह्न या डिज़ायन का 'मन' (Mana) अथवा गुप्त-शक्ति आ जाती है। धीरे-धीरे यह विश्वास किया जाने लगा कि अगर किसी वस्तु पर ताबीज़ की छाप लगा दी जाय तो वह शक्ति उस वस्तु में भी आ जाती है; अर्थात उस वस्तु पर उस ताबीज़ के पहिनने वाले का अधिकार स्थापित हो जाता है और उसके अधिकार का उल्लंघन होने पर ताबीज़ की शक्ति अपराधी को दण्डित करती है। इस प्रकार ताबीज़ों से मुद्राएँ अस्तित्व

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में आईं जिनकी छाप लगाकर वस्तुओं पर अधिकार प्रकट किया जा सकता था।

सामाजिक संगठन में परिवर्तन—स्वामी-भाव का प्रदर्शन केवल भौतिक वस्तुओं पर ही नहीं वरन् मनुष्यों पर भी प्रकट किया जा सकता था। ताम्रकाल में विभिन्न-समूहों के पारस्परिक संघर्ष बढ़ गये थे, इसलिये यदा-कदा युद्ध होते रहते थे। इन युद्धों में पराजित शत्रु को दण्ड देने के लिये **दास-प्रथा** (Slavery) का प्रचलन हुआ। दूसरे शब्दों में मनुष्य ने मनुष्य को पालतू बनाना सीखा। सामाजिक व्यवस्था में दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन **स्त्रियों की दशा** से सम्बन्धित है। नव-पाषाणकाल में हुये अधिकांश आविष्कारों का श्रेय स्त्रियों को था। इसलिये उस युग में उनकी स्थिति पुरुषों से उत्तम और परिवार व्यवस्था मातृसत्तात्मक थी। ताम्रकाल में अधिकांश आविष्कार स्वयं पुरुषों ने किये थे, इसलिए इस काल में स्त्रियों की तुलना में उनकी अवस्था अधिक अच्छी हो जाती है। इन आविष्कारों से स्त्रियों को बोझा ढोने, खेत जोतने और बर्तन बनाने जैसे कार्यों से मुक्ति मिल गई, परन्तु उनका सामाजिक स्तर गिर गया। अब सामाजिक व्यवस्था **पितृसत्तात्मक** हो गई अर्थात परिवार का स्वामी पुरुष हो गया। परिवार की सम्पत्ति पर, जिसमें आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, औज़ार, भूमि और दासादि होते थे, उसका अधिकार हो गया और परिवार के सब स्त्री-पुरुष उसकी आज्ञा मानने के लिए बाध्य हो गये। साधारणतः एक समूह में जिस व्यक्ति के पास सबसे अधिक सम्पत्ति और दास होते थे वह युद्धों में नायक का भी काम करता था। अगर वह सफल नायक सिद्ध होता था तो उसकी शक्ति बढ़ जाती थी। वह एक प्रकार से समूह या क़बीले का **मुखिया** बन जाता था। उसकी सम्पत्ति का स्वामी उसके बाद उसका पुत्र होता था, इसलिये व्यवहार में मुखिया या नायक पद भी पैतृक होता जाता था। यही मुखिया 'कृषि-नाटक' (पृ० ८२) में अन्नदेव का अभिनय करते-करते वास्तविक राजा बन बैठे।

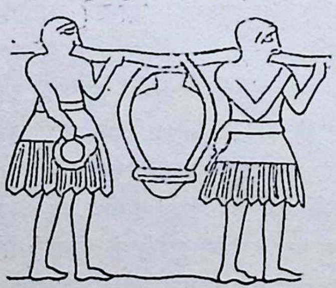

ऊपर दिया गया चित्र खफजा से प्राप्त तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० के प्रारम्भ की एक रिलीफ में बनी मूर्ति की अनुकृति है। इसमें दो व्यक्तियों को एक डण्डे में एक बड़ा घड़ा लटकाकर ले जाते हुये दिखाया गया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

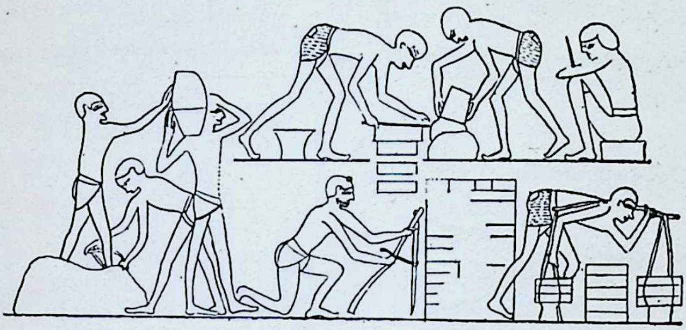

१०

काँस्यकाल, नगर-क्रान्ति और सभ्यता का जन्म

काँस्य का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग

ताम्रकाल के अन्त में, ३००० ई० पू० के लगभग, मनुष्य ने काँस्य का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिए प्रयोग करने की विधि का आविष्कार किया। ताम्र और काँस्य में अधिक अन्तर नहीं है। ताम्र पाषाण से लचीला होता है, इसलिये उसके उपकरणों की धार शीघ्र नष्ट हो जाती है। यदि इसमें थोड़ा-सा टिन मिला दिया जाय तो अधिक कठोरता आ जाती है। इस मिश्रित धातु को ही काँस्य (Bronze) कहते हैं। इसका आविष्कार सम्भवतः आकस्मिक रूप से हुआ होगा। कभी ताम्र को पिघलाते समय उसमें टिन मिल गया होगा; स्वाभाविक है इस मिश्रित धातु से बने उपकरण अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए होंगे। इसी से

ऊपर दिये गये चित्र में, जो थीबिज नगर (मिश्र) से प्राप्त हुआ है, ईंटों के बनाने की विधि का अङ्कन है। चित्र में बाईं ओर एक श्रमिक फावड़े (Hoe) से गीली मिट्टी में भूसा मिला रहा है। दूसरा श्रमिक अपने साथी के कन्धे पर मिट्टी की बाल्टी रख रहा है। ऊपर बाईं ओर एक कारीगर गीली मिट्टी को साँचे में ढालकर ईंटें बना रहा है। श्रमिक गीली मिट्टी उसके सामने डाल रहा है। एक निरीक्षक छड़ी हाथ में लिए उनका काम देख रहा है। नीचे एक व्यक्ति बैठकर ईंटों के ढेर को माप रहा है और दूसरा बहँगी (Yoke) में ईंटे भरकर गन्तव्य स्थान को ले जा रहा है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मनुष्य ने काँस्य की महिमा जानी होगी। यह आविष्कार सर्वप्रथम कब और कहाँ हुआ, कहना कठिन है। इतना निश्चित है कि इसका प्रयोग सिन्धु प्रदेश, मिश्र, क्रीट और सुमेर में ३००० ई० पू० के कुछ पहले या कुछ बाद में, ट्राय में २०००

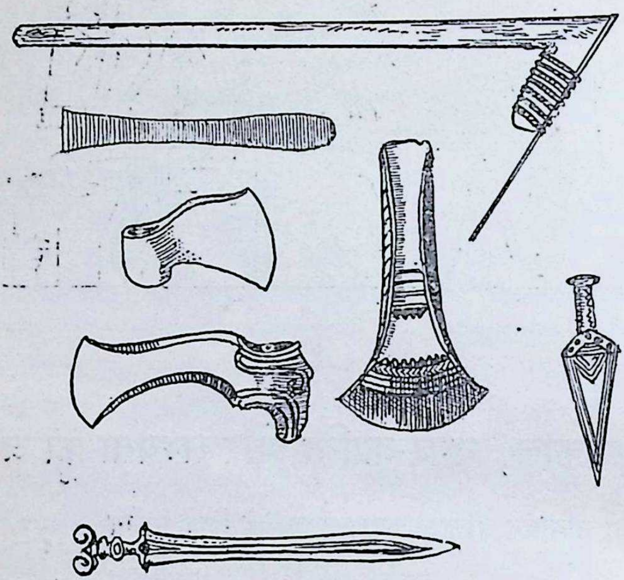

चित्र ५३ : कांस्यकालीन-उपकरण

ई० पू० के बाद तथा शेष यूरोप में इसके भी बाद प्रारम्भ हुआ। स्मरणीय है कि दक्षिणी भारत, जापान, उत्तरी अमरीका और आस्ट्रेलिया में बहुत से भाग ऐसे हैं जहाँ ताम्र और काँस्यकाल कभी नहीं आये। वहाँ मनुष्य ने पाषाणकाल से सीधे लौहकाल में प्रवेश किया।

नगर-क्रान्ति

नगरों के उदय के कारण—(१) ताम्र और काँस्य का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग की विधि तथा हल, पहिया, बैलगाड़ी और पालदार नाव इत्यादि आविष्कार क्रान्तिकारी सम्भावनाओं से परिपूर्ण थे। परन्तु समाज का पुनर्गठन हुये बिना इनसे समुचित लाभ नहीं उठाया जा सकता था। इसका प्रमाण सीरिया, ईरान तथा मेडीट्रेनियन के तटवर्ती प्रदेश और बलूचिस्तान में रहने वाली जातियाँ हैं, जो ताम्र से ही नहीं वरन् उपर्युक्त अधिकांश आविष्कारों से परिचित होते हुये भी विशेष प्रगति नहीं कर सकीं। इसका प्रमुख कारण उनकी सामाजिक व्यवस्था का यथावत् बने रहना था। परन्तु नील, दजला और फरात तथा सिन्धु

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

की घाटियों में परिस्थितियाँ भिन्न थीं। जैसा हम देख चुके हैं, यह विशाल भूभाग होलोसीन युग के आरम्भ से ही अधिकाधिक शुष्क होता जा रहा था। अतः यहाँ मनुष्य ऐसे स्थानों पर बसना पसन्द करता था जहाँ उसे व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति और कृषि-कर्म के लिये पूरे वर्ष पर्याप्त जल मिल सके। यह सुविधा केवल उपर्युक्त नदियों की घाटियों में ही उपलब्ध हो सकती थी। इसलिये हम देखते हैं कि चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० में मिश्र, सुमेर तथा सिन्धु प्रदेश में निवास करने वाले मनुष्यों की संख्या बढ़ने लगती है और बड़े-बड़े नगर अस्तित्व में आने लगते हैं। ये नगर आधुनिक काल के लंदन और न्यूयार्क नगरों की तुलना में बहुत छोटे थे, परन्तु ताम्र-प्रस्तरकालीन ग्रामों की तुलना में बहुत बड़े थे। अतः गॉर्डन चाइल्ड ने मानव-सभ्यता के इस अध्याय को 'नगर-क्रान्ति का युग' कहा है।

(२) **मिश्र** एक छोटा सा देश है और चारों ओर से रेगिस्तानों, पर्वतों और समुद्रों से घिरा है, तथापि नील नदी ने, सहस्रों वर्षों में बाढ़ के साथ लाई हुई मिट्टी से इसके मध्य एक अत्यन्त उर्वर भूखण्ड निर्मित कर दिया है। यह भूखण्ड ३० फुट मोटी उर्वर मिट्टी की तहों से बना है और लगभग ७५० मील लम्बा तथा १० से ३० मील तक चौड़ा है। प्राचीन काल में यह प्रदेश इतना उपजाऊ था कि यहाँ एक ही वर्ष में तीन-तीन फसलें उगाना असम्भव नहीं था। **सुमेर** भौगोलिक दृष्टि से उस उर्वर-अर्धचन्द्र (Fertile Crescent) का दक्षिण-पूर्वी सिरा है, जो मेडीट्रेनियन के पूर्वी तट पर पेलेस्टाइन से प्रारम्भ होता है और सीरिया तथा असीरिया होता हुआ दक्षिण-पूर्व में फारस की खाड़ी के तट तक चला गया है (मानचित्र ३)। जिस प्रकार मिश्र नील नदी के द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना था, उसी प्रकार सुमेर दजला और फरात द्वारा लाई हुई मिट्टी से। यहाँ की **भूमि की उर्वरता** भी विश्व-विख्यात थी। यहाँ उपज साधारणतः बीज की छियासी गुना होती थी। सौ गुनी उपज भी असम्भव नहीं थी। इसके अतिरिक्त यहाँ नदी झीलों और तालाबों में **मछली** और भूमि पर **खजूर** के वृक्ष बहुतायत से मिलते थे। इस प्रकार मिश्र और सुमेर दोनों ही मनुष्य को आकर्षित करने वाले प्रदेश थे। परन्तु इनको आवास के योग्य बनाने के लिए कठोर श्रम करना आवश्यक था। इन दोनों ही प्रदेशों में वर्षा नाम मात्र को होती थी। यह ठीक है कि यहाँ प्रतिवर्ष बाढ़ आती थी, परन्तु बाढ़ उतरने के कुछ दिन बाद ही भूमि सूखकर कठोर हो जाती थी। अतः **कृत्रिम सिंचाई** किये बिना कृषि-कर्म में सफलता मिलना कठिन था। दूसरे, **बाढ़ के जल को नियन्त्रित** करना भी आवश्यक था। सुमेर में एक कठिनाई और थी। यह हाल ही में दजला और फरात के द्वारा लाई मिट्टी से बना होने के कारण दलदलों से भरा हुआ था। इन दलदलों में नरकुल के घने जंगल थे। **दलदलों को सुखाये** और नरकुल के **जंगलों**

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

को साफ किये बिना यहाँ की भूमि की उर्वरता निरर्थक थी। परन्तु जंगल साफ करना, बाढ़ के जल को बाँध बनाकर नियन्त्रित करना और नहरों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था करना, ये सब काम ताम्रकाल के छोटे-छोटे गाँवों के निवासी नहीं कर सकते थे। इसके लिये **मनुष्य को विशालतर मानव-समूहों में संगठित होना आवश्यक** था। एक बार बाँध और नहरें बना लेने के बाद उनकी रक्षा के लिये भी सदैव प्रयत्न करते रहने की आवश्यकता थी। इसलिये मिश्र और सुमेर में विशाल मानव-समूहों का एक स्थान पर स्थायी रूप में निवास करना आवश्यक हो गया। इससे मिलती-जुलती भौगोलिक परिस्थिति सिन्धु-प्रदेश में भी थी। इसलिये वहाँ भी, लगभग उसी समय, नगर-सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ।

सुमेर में नगरों का आविर्भाव—चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० सुमेर, मिश्र और सिन्धु प्रदेश में, ताम्रकालीन ग्रामों के स्थान पर काँस्यकालीन नगरों के उदय का युग है। इस संक्रान्ति-काल पर सबसे अच्छा प्रकाश सुमेरियन साक्ष्य से पड़ता है। इस प्रदेश के इरिडू, उर, इरेक, लागाश और लारसा इत्यादि नगरों में विकास की क्रमिक अवस्थाएँ लगभग एक सी हैं, इसलिये **इरेक** के साक्ष्य को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। इस नगर के प्राचीनतम अवशेष हलफियन और **अलउबेद** (al'Ubaid) युग के हैं। अलउबेद और ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ (लग० ३००० ई० पू०) के अवशेषों में ५० फुट का अन्तर है। इनको पुरातत्त्ववेत्ता **उरुक** (Uruk) और जम्देतनस्र (Jemdet Nasr), इन दो सांस्कृतिक युगों में विभाजित करते हैं। उरुक-युग में इरेक ग्राम के स्थान पर नगर बन जाता है। इस युग में बना इनन्ना देवी का मन्दिर १०० फुट लम्बा और २४५ फुट चौड़ा है तथा अनु देवता का जिगुरत ३५ फुट ऊँचा। इस युग का अन्त लगभग ३५०० ई० पू० में होता है। अगला युग **जम्देतनस्र** कहलाता है। इस युग में नगर का वैभव बढ़ जाता है, विदेशों से बहुमूल्य पाषाण अधिक मात्रा में मँगवाये जाने लगते हैं, काचन (Glaze) किये हुए उपकरण और मुद्राएँ तथा हल्के रथों का निर्माण होने लगता है तथा लिपि और अङ्कों का आविष्कार हो जाता है। लिपि का आविष्कार हो जाने के कारण साहित्यकारों और विद्वानों के लिये अपनी रचनाओं, व्यापारियों के लिये अपना हिसाब-किताब, पुजारियों के लिये मन्दिरों की आय-व्यय का विवरण और जादू-टोने तथा राजाओं के लिये अपनी उपलब्धियों को लिपिबद्ध करना सम्भव हो जाता है। इसलिये ३००० ई० पू० के लगभग सुमेर के प्रागैतिहासिक युग का अन्त होता है और ऐतिहासिक युग प्रारम्भ होता है।

केन्द्रीय शक्ति का आविर्भाव

केन्द्रीय शक्ति की आवश्यकता—सुमेर तथा अन्य स्थानों पर नागरिक जीवन का मूलाधार समाज का सुसंगठित होना था। प्रत्येक नगर की सफलता इस बात

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पर निर्भर रहती थी कि उसके नागरिक सामूहिक रूप से सार्वजनिक-निर्माणकार्य, जैसे नहर बनाना, बाँध बनाना और मन्दिर, जिगुरत तथा अन्य भवनों का निर्माण करना, आदि में भाग लेते हैं। इसके लिये यह आवश्यक था कि सार्वजनिक निर्माण कार्यों की योजना बनाई जाय; उस योजना को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक जन-शक्ति और साधन हों; श्रमिकों को वेतन के रूप में देने के लिए भण्डारों में अन्न और अन्य सामग्री हो तथा इन योजनाओं को व्यवस्थित रूप से कार्यान्वित करने वाली और नागरिकों को अनुशासन में रखने वाली कोई केन्द्रीय शक्ति हो।

सुमेर के सत्ताधारी पुजारी और मिश्र के फराओ—सुमेर में नगरों में व्यवस्था बनाये रखने का उत्तरदायित्व सिद्धान्ततः नगर के प्रधान मन्दिर के देवता और व्यवहार में प्रधान पुजारी का था। यहाँ भूमि को देवता की व्यक्तिगत सम्पत्ति, मन्दिर को देवता का महल और प्रधान पुजारी को उसका प्रतिनिधि या वायसराय माना जाता था। **प्रधान पुजारी** देवता की 'आज्ञानुसार' और अन्य पुजारियों की सहायता से नगर की व्यवस्था करता था। प्रत्येक नागरिक देवता का दास होता था, इसलिये उसे नगर के सार्वजनिक-निर्माणकार्यों में अन्य नागरिकों के साथ सहयोग देना होता था। बड़ी संख्या में दस्तकार, कृषक, कलाकार, सेवक और लिपिक पुजारी-वर्ग के अनुशासन में रहकर कार्य करते थे। पुजारी मिट्टी की पाटियों पर मन्दिरों के आय-व्यय का समुचित रूप से हिसाब-किताब रखते थे। सुमेर में यह व्यवस्था तब तक चलती रही जब तक देश का राजनीतिक एकीकरण न हो गया। **सारगोन प्रथम** के नेतृत्त्व में राजनीतिक एकीकरण हो जाने पर व्यवस्था में परिवर्तन होना आवश्यक था। **मिश्र** में इसके विपरीत ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ में ही राजनीतिक एकीकरण हो जाता है, इसलिये वहाँ समाज को व्यवस्थित करने और सार्वजनिक निर्माण कार्यों को व्यावहारिक रूप देने का उत्तरदायित्व राजा या **फराओ** पर पड़ा। **सिन्धु-प्रदेश** में भी किसी-न-किसी प्रकार की शक्तिशाली सरकार अवश्य अस्तित्व में आ गई होगी, परन्तु यहाँ की लिपि के न पढ़े जा सकने के कारण यह कहना कठिन है कि यहाँ की शासन-व्यवस्था का केन्द्र सामन्त थे अथवा पुजारी या राजा।

विदेशी व्यापार—सुमर, मिश्र और सिन्धु-प्रदेश, इन तीनों ही स्थानों पर कृषकों को अतिरिक्त-उत्पादन करना पड़ता था। इसका एक कारण था समाज में ऐसे वर्गों का वढ़ जाना जो प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन-कार्य में भाग नहीं लेते थे। परन्तु इसका एक और भी कारण था। यह सभी प्रदेश ऐसे थे जहाँ आवश्यकता की सभी वस्तुएँ प्राप्त नहीं होती थीं। सुमेर में न तो ताम्र मिलता था और न पत्थर। यहाँ तक कि भवन-निर्माण के लिए लकड़ी भी बाहर से मँगानी पड़ती थी। मिश्र में पत्थर मिल जाता था परन्तु ताम्र, लकड़ी, मेलेचाइट, बहुमूल्य पत्थरों तथा राल (Resin) इत्यादि का आयात करना पड़ता था। मोहनजोदाड़ो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

और हड़प्पा के नागरिक देवदार और बहुमूल्य धातुएँ बाहर से मँगवाते थे। संक्षेप में, काँस्यकालीन नगर नव-पाषाणकाल और ताम्रकाल के गांवों की तरह **आत्म-निर्भर नहीं थे**। उन्हें अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये बाहर से आयात किये हुए माल पर निर्भर रहना पड़ता था और इसके लिए अतिरिक्त-खाद्यान्न का उत्पादन करना पड़ता था। यह तथ्य नागरिक-जीवन के विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

सुमेर में **विदेशी व्यापार** बहुत कुछ मन्दिरों के सदस्य व्यापारियों के हाथ में था। मिश्र में भी स्वतन्त्र व्यापारियों का एक वर्ग के रूप में अस्तित्व था। परन्तु सिन्धु प्रदेश में क्या अवस्था थी, यह कहना कठिन है। इतना निश्चित है कि उनके व्यापारिक सम्बन्ध कम-से-कम सुमेर तक अवश्य स्थापित हो गये थे। इन सब देशों के व्यापारी सौदागरों के माध्यम से विदेशों से माल का आयात और निर्यात करते थे। शीघ्र ही इन सौदागरों के काफ़िलों की सुविधा के लिये स्थान-स्थान पर

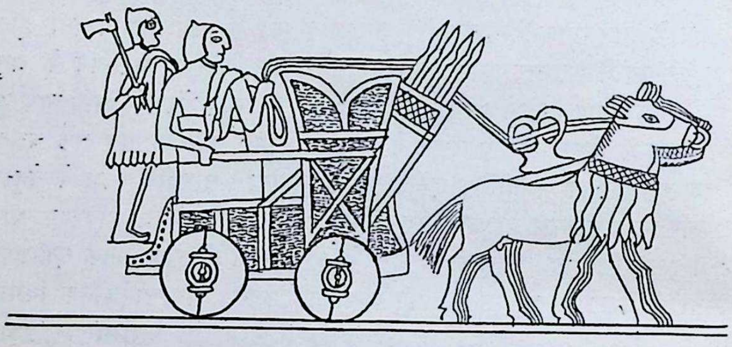

चित्र ५४ : सुमेरियन-रथ

व्यापार-केन्द्र स्थापित हो गये और विभिन्न देशों के शासकों को अपने देश के व्यापारियां के हितों और काफिलों की सुरक्षा के लिए **सैनिकों** की आवश्यकता पड़ने लगी। तीसरी सहस्राब्दी में हम बहुत से शासकों को अपने राज्य के व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिये **युद्ध** करते देखते हैं। इसके अतिरिक्त उनके लिये यह भी आवश्यक हो गया कि वे व्यापारियों, सौदागरों, कृषकों और अन्य वर्गों के पारस्परिक झगड़े सुलझाने के लिए **राजकर्मचारी** रखें और **न्यायालय** (Law Courts) स्थापित करें। न्यायालयों के लिये **कानूनों** (Laws) की आवश्यकता पड़ी। पहले प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार न्याय करने का प्रयास किया गया। कालान्तर में विविध स्थानों के रिवाजों में समरूपता लाने के लिए **विधि-संहिताओं** (Law Codes) की रचना की गई।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मन्दिरों के पुजारियों और व्यापारियों को सम्पत्ति और व्यापार सम्बन्धी आँकड़े रखने पड़ते थे, इसलिये नगरों के उदय के साथ-साथ **लिपि** (Script) का जन्म भी हुआ। इसी प्रकार **बहीखाता** रखने की विद्या (Accountancy), **अङ्क** (Numerals), **भार और नाप के निश्चित पैमाने** (Standard Weights and Measurements) तथा **ज्योमिति** के नियम अस्तित्व में आये। लिपि के आविष्कार से प्रचलित लोक-कथाओं और विविध विद्याओं से सम्बद्ध ज्ञान को लिपिबद्ध करना सम्भव हो गया। इससे आगामी सन्ततियों के लाभार्थ **साहित्य** (Literature) की रचना और रक्षा हो सकी। इस बीच में कृषकों की सहायता के लिये नक्षत्रों का अध्ययन करके **सौर-पंचाङ्ग** (Solar Calendar) का आविष्कार किया जा चुका था। लिपि का आविष्कार हो जाने से **खगोल-विद्या** और **ज्योतिष** से सम्बन्धित ज्ञान की प्रगति में बहुत सहायता मिली।

व्यापारियों को अपनी सम्पत्ति पर अधिकार व्यक्त करने के लिये और माल की बाहर भेजी जाने वाली गांठों पर चिह्न अंकित करने के लिये **मुद्राओं** (Seals) की आवश्यकता पड़ती थी (चि० ५७)। इससे मुद्रा बनाने की कला (Lapidary) का विकास हुआ और मुद्रा बनाने वाले कलाकारों का स्वतन्त्र वर्ग के रूप में जन्म हुआ। इससे **काचन विद्या** (Glazing) के ज्ञाताओं और **शीशा** (Glass) बनाने वाले कलाकारों की माँग भी बढ़ी।

स्थायी जीवन व्यतीत करने के कारण मनुष्य के लिये यह सम्भव हो सका कि वह अपना जीवन सुखमय बनाने की ओर ध्यान दे। सबसे पहले उसने अपने **भवनों** की ओर ध्यान दिया। वह नव-पाषाणकाल और ताम्रकाल के प्रारम्भ में मेसोपोटामिया और मिश्र में नरकुल और मिट्टी की झोपड़ियाँ बनाता था (चित्र ४०, पृ० ७९), परन्त

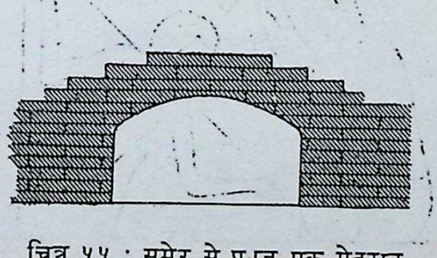

चित्र ५५ : सुमेर से प्राप्त एक मेहराव

काँस्यकाल में अर्थात ३००० ई० पू० के कुछ पहले उसने **ईंटों** का आविष्कार किया। कच्ची ईंटें मिट्टी को साँचे में ढालकर और फिर धूप में सुखाकर बनाई जाती थीं (चित्र ५२ पृ०, ९९)। सिन्धु-प्रदेश में **पक्की ईंटों** का बहुतायत से प्रयोग होता था। ईंटों के आविष्कार से झोपड़ियों के स्थान पर मकान बनाना सम्भव हो गया। जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी से विभिन्न प्रकार के बर्तन बना सकता है, उसी प्रकार कारीगर ईंटों को

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भिन्न-भिन्न शैलियों में रखकर नये-नये ढंग के मकान बना सकता है। इतना ही नहीं इनकी सहायता से मकानों का आकार भी विशालतर हो सकता है। ईंटों की प्रारम्भिक इमारतें झोपड़ियों के अनुरूप होती थीं, परन्तु सुमेर और सिन्धु-प्रदेश में ३००० ई० पू० के लगभग **मेहराब** (Arch) का आविष्कार हो चुका था (चित्र ५५)। सिन्धु-प्रदेश में तीसरी सहस्राब्दी में **दो मंजिले मकान** भी बनने लगे थे।

ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ में सभ्य समाज—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि काँस्यकालीन नगर-क्रान्ति के कारण मनुष्य का जीवन आमूल परिवर्तित हो गया। जिस समय, तीसरी सहस्राब्दी की प्रारम्भिक शताब्दियों में, ऐतिहासिक युग का सूत्रपात होता है, सभ्य मनुष्य स्वयं को नदियों की घाटियों में अवस्थित नगरों में निवास करता पाता है। ये नगर विस्तार और जनसंख्या, दोनों दृष्टि से ताम्र-कालीन ग्रामों की तुलना में बहुत बड़े थे। मोहनजोदाड़ों का क्षेत्रफल एक वर्गमील

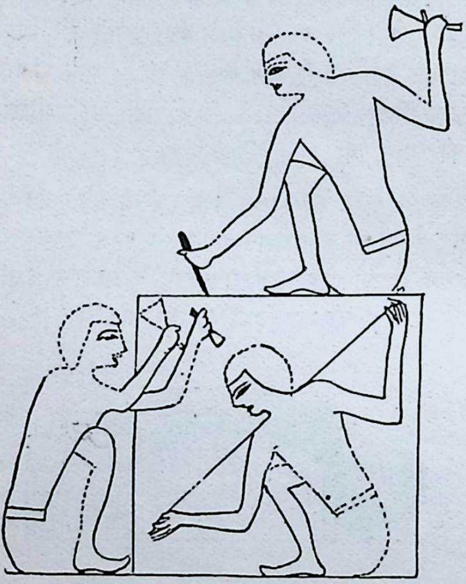

चित्र ५६ : पिरेमिडयुगीन मिश्र में पत्थर तराशने का एक दृश्य

से अधिक था। सुमेर के उर नगर में कम-से-कम १५० एकड़ में भवन बने हुये थे, जिनमें लगभग २४,००० व्यक्ति रहते होंगे। यहाँ की 'राज-समाधि' में ७०० शव प्राप्त हुये हैं, जो निश्चित रूप से काफी बड़ी संख्या है। लागाश सुमेर का अपेक्षाकृत छोटा नगर था परन्तु इसकी **आबादी** भी १९,००० से कम नहीं थी।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ये नगर कच्ची और पक्की ईंटों तथा प्रस्तर-खण्डों (चित्र ५६) से बने भवनों से सुसज्जित थे। सिन्धु-प्रदेश के नगरों को ऐसी योजना के अनुसार बनाया गया था कि सफाई और जल की समुचित व्यवस्था रखने में सुविधा हो। यहाँ **सफाई और जल की व्यवस्था** इतनी अच्छी थी, जितनी मध्यकालीन यूरोप के अधिकांश नगरों में नहीं मिलती। बहुत से भारतीय नगरों में आजकल भी ऐसी व्यवस्था नहीं है। इन नगरों में कृषक ऐसे हलों का तथा कुम्हार ऐसे चाकों का प्रयोग करते थे जिनमें औद्योगिक-क्रान्ति होने तक कोई सुधार नहीं हो सका। इन नगरों के आर्थिक जीवन का आधार विदेशी व्यापार था। यहाँ के सौदागरों के काफिले पशुओं, बैलगाड़ियों और नावों पर माल लादकर दूरस्थ देशों की यात्रा करते थे। माल से भरी उनकी नावें, नील, दजला और फरात तथा सिन्धु नदियों में देखी जा सकती थीं। इन नगरों के बाजारों की देश-विदेश से आये व्यापारी और सौदागर उसी प्रकार शोभा बढ़ाते थे, जिस प्रकार परवर्ती युगों में अलेक्ज़ेण्ड्रिया, रोम और बग़दाद नगरों में। व्यापारी अपने आय-व्यय के आँकड़े रखने के लिये अङ्कों

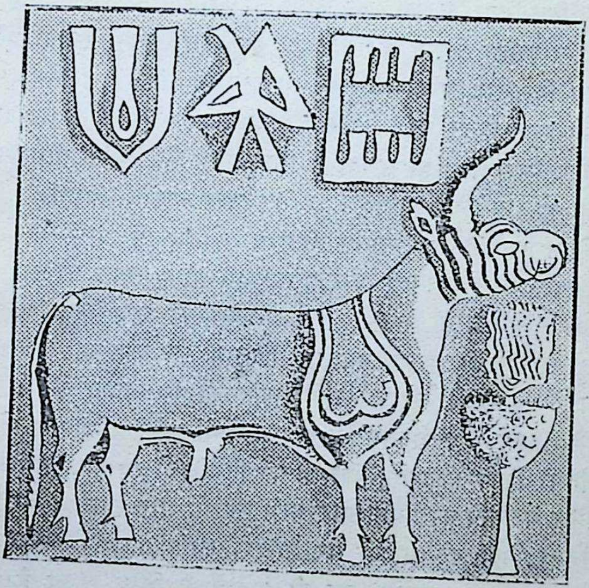

चित्र ५७

और लिपि का प्रयोग करते थे और अपने माल की गाँठों पर मिट्टी की पाटी लगाकर अपनी मुद्रा अङ्कित कर देते थे। इन नगरों के **शासक** भी प्राचीनकाल के अन्य ऐतिहासिक शासकों के समान मन्दिर, नहरें, राजमहल और समाधियाँ इत्यादि बनवाने तथा युद्धों द्वारा अपने राज्य का विस्तार करने में गर्व का अनुभव करते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

थे और अपनी उपलब्धियों को मिट्टी की पाटियों पर उत्कीर्ण कराते थे। इस युग के, उत्खनन से प्राप्त होने वाले, महत्त्वपूर्ण अवशेष कृषि और आखेट से सम्बन्धित उपकरण नहीं वरन् राज-समाधियाँ, भव्य राज-प्रासाद, मन्दिर, जिगुरत, मूर्तियाँ, फर्नीचर, मुद्राएँ और अभिलेख इत्यादि हैं।

संक्षेप में, वे सब बातें जो सभ्य नागरिक जीवन के साथ जुड़ी हैं और वे सब आविष्कार जो मनुष्य के जीवन को सुखमय और सुविधापूर्ण बनाते हैं ताम्र और काँस्यकाल में, तीसरी सहस्राब्दी की प्रारम्भिक शताब्दियों तक, अस्तित्व में आ चुके थे। आगामी दो सहस्र वर्षों में मनुष्य इन सुख सुविधाओं को (वर्णमाला और लोहे का उत्पादन तथा उपकरण बनाने के लिये प्रयोग की विधि को छोड़कर) और अधिक नहीं बढ़ा पाया। इसीलिये काँस्यकालीन नगर-क्रान्ति के युग को 'सभ्यता के जन्म' का युग कहा जाता है।

हमने ऊपर सभ्यता के जन्म का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसमें सिन्धु-प्रदेश, मिश्र और बैबिलोनिया के नागरिक जीवन से सम्बन्धित सभी प्रमुख तथ्य आ जाते हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन तीनों स्थानों की सभ्यता एक सी थी। विस्तरशः अध्ययन करने पर ज्ञात होगा कि इन तीनों प्रदेशों की सभ्यता में मूलभूत अन्तर था। सुमेर और मिश्र की आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था पूर्णतः भिन्न थी। हो सकता है सिन्धु-प्रदेश में कोई तीसरे प्रकार की व्यवस्था रही हो। सुमेरियन समाज बहुत से स्वतन्त्र नगरों में विभाजित था, जिनके सामूहिक जीवन का केन्द्र नगर-मन्दिर होता था। मिश्र में प्राचीनतम युग में ही राजनीतिक एकीकरण हो जाता है और सत्ता पुजारियों के स्थान पर फराओ अथवा राजा के हाथ में केन्द्रित हो जाती है। सिन्धु-प्रदेश की राजनीतिक व्यवस्था कैसी थी, यह ज्ञात नहीं है, परन्तु यह स्पष्ट है कि वहाँ की व्यवस्था सुमेर और मिश्र की व्यवस्था से भिन्न रही होगी। इसी प्रकार की भिन्नता जीवन के अन्य क्षेत्रों में मिलती है। मिश्र के प्राचीनतम भवन राज-समाधियाँ हैं और सुमेर के मन्दिर। तीनों स्थानों पर लिपि का प्रयोग होता है पर किन्हीं दो स्थानों की लिपि एक सी नहीं है। मिश्र में लिपि का प्रयोग प्रारम्भ में मुद्राओं और स्मारकों पर किया गया जबकि सुमेर में मिट्टी की पाटियों पर मन्दिरों की आय और व्यय का विवरण लिखने में। काँस्य का प्रयोग इन तीनों देशों में किया जाता है परन्तु ठठेरे जो उपकरण बनाते हैं वे विभिन्न प्रकार के हैं। नगरों की योजना, मुद्राओं पर मिलने वाले चित्र, राज-समाधियाँ, धर्म, वेष-भूषा, रहन-सहन तथा ज्ञान-विज्ञान, इन सभी बातों में सिन्धु-प्रदेश की सभ्यता सुमेरियन-सभ्यता से और सुमेरियन-सभ्यता मिश्र की सभ्यता से भिन्न हैं। अतः कहा जा सकता है कि यह यग केवल 'सभ्यता के जन्म' का युग ही नहीं वरन् 'विशिष्ट सभ्यताओं के जन्म' का

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

युग है। लाखों वर्ष तक प्रयास करने के बाद मनुष्य बर्बर जीवन का परित्याग कर सभ्य समाज को जन्म देने में सफल होता है; परन्तु स्वयं को प्रादेशिक वातावरण के अनुकूल बनाने के प्रयत्न में उसके 'सभ्य समाज' का रूप एक सा नहीं रह पाता। वस्तुतः ऐतिहासिक युग में मानव-इतिहास की विषय-वस्तु (Theme) प्रादेशिक सांस्कृतिक भेदों को मिटाकर यथार्थ एकता स्थापित करता रहा है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पाषाणकालीन संस्कृतियाँ

निम्नलिखित सूची में पूर्व-पाषाणकाल और मध्य-पाषाणकाल की उन संस्कृतियों के नाम दिये गये हैं जिनका उल्लेख इस पुस्तक में हुआ है। प्रत्येक संस्कृति के नाम के आगे उसकी तिथि दी गई है (प्रा० पू० पा०=प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल; म० पू० पा०=मध्य-पूर्व-पाषाणकाल; प० पू० पा०=परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल तथा म० पा०=मध्य-पाषाणकाल)। तिथि के आगे उस स्थान का निर्देश है जिसके नाम पर वह संस्कृति प्रख्यात है।

अस्तूरियन (म० पा०) : अस्तूरिया, उत्तरी स्पेन।

अचूलियन (प्रा० पू० पा०) : सेन्ट अचूल, आमीन्स (सोम), उत्तरी फ्रांस।

अनयाथियन (प्रा० पू० पा०—प० पू० पा०) : अन-या-था=उत्तरी वर्मा का निवासी।

अतेरियन (म० पू० पा०—प० पू० पा०) : बीर-अल-अतेर, ट्यूनिशिया।

अजीलियन (म० पा०) : मास दाजील, दक्षिणी फ्रांस।

ऑरिन्येशियन (प० पू० पा०) : ऑरिन्याक्, तूलूस, दक्षिणी फ्रांस, से ४० मील दक्षिण-पश्चिम की ओर एक गुफा, ।

एब्बेविलियन (प्रा० पू० पा०) : एब्बेविले (सोम), उत्तरी फ्रांस।

ओल्डोवान (प्रा० पू० पा०) : ओल्डोवे गॉर्ज, उत्तरी टंगान्यिका।

क्लेक्टोनियन (प्रा० पू० पा०) : क्लेक्टोन, एसेक्स।

काफुआन (प्रा० पू० पा) : काफू नदी, यूगांडा।

किचेनमिडेन (म० पा०) : डेन्मार्क में प्रागैतिहासिक अस्थि इत्यादि के अवशेषों से निर्मित ढेर के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द।

केप्सियन (प० पू० पा०—म० पा०) : लैटिन Capsa=Gafsa ट्यूनिशिया।

ग्रवेशियन (प० पू० पा०) : ला ग्रावेत, दोर्दोन की घाटी, दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस।

चैलियन (प्रा० पू० पा०) : चैले-सर-मार्न, पेरिस के निकट।

चोउ-कोउ-तियेनियन (प्रा० पू० पा०) : चोउ-कोउ-तिएन गुफा, पेकिंग से ४० मील दक्षिण-पश्चिम की ओर।

तार्देनुआजियन (म० पा०) : ला फेयर-आं-तार्देनुआ, उत्तर-पश्चिमी फ्रांस।

पतजितनियन (प्रा० पू० पा०) : पतजितन, दक्षिणी-मध्य जावा।

पेरिगोरडियन (प० पू० पा०) : पेरिगॉर्ड प्रदेश दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस।

मूस्टेरियन (म० पू० पा०) : ल मूस्टीर, दोर्दोन, दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस।

मैग्लेमोजियन (म० पा०) : मैग्लेमोस, जीलैण्ड, डेनमार्क।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मैग्डेलेनियन (प० पू० पा०) : ला मादलें, दोर्दोन, दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस।
लेवालुआजियन (प० पू० पा०) : लेवालुश्रा-पेरेट, पेरिस।
शेतलपेरोनियन (प० पू० पा०) : शेतलपेरोन, मध्य फ्रांस।
स्टेलैनबोश (प्रा० पू० पा०) : स्टलैनबोश, केपटाउन के समीप, दक्षिण अफ्रीका।
सोहन (प्रा० पू० पा०) : सोहन नदी, उत्तरी पाकिस्तान।
सौल्यट्रियन (प० पू० पा०) : सौल्युट्र, दक्षिण-पूर्वी फ्रांस।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शब्द-सूची

Age of Carbon	कार्बन कल्प
Age of Fishes	मत्स्य कल्प
Alignment	एलायन्मेंट
Amphibia	उभयचर
Amulet	तावीज़
Anthropology	नृवंश शास्त्र, नृतत्त्व शास्त्र
Ape	एप
Arch	मेहराब
Archaeozoic Age	प्रजीव युग
Artifact	औज़ार, उपकरण
Australopithecus Africanus	ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्, अफ्रीकी मानव
Awls	सूआ, टेकुला
Axe	कुल्हाड़ी, छुरा
Azoic Age	अजीव-युग
Barbarian	बर्बर
Barrow	बेरो
Blade	ब्लेड
Boskop Man	बोस्कोप-मानव
Bronze Age	कांस्य काल
Burin	रुखानी, नक्काशी यन्त्र
Cainozoic Age	नवजीव युग
Calender	पंचाङ्ग
Carpentry	काष्ठकला
Cave	गुफा, गुहा
Cell	कोष
Chalcolithic	ताम्र-प्रस्तर युग
Chancelade Man	शांसलाद मानव
Chopper	चॉपर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Clay	मृत्तिका, मिट्टी
Code	संहिता
Combe-Capelle	कोम्ब कोपेल
Conglomerate	कांग्लोमेरेट
Copper Age	ताम्रकाल
Core	कोर, आन्तरिक
Corn King	अन्नदेव
Cosmic Time	सृष्टि समय
Coup-de-poing	मुष्टि छुरा
Cro-Magnon	क्रोमान्यों
Cromlech	क्रोमलेच
Culture	संस्कृति
Deposition	निक्षेप
Dolmen	डॉलमेन
Domestication of Animals	पशुपालन
Eocene Period	आदि-नूतन-युग
Eolith	इयोलिथ
Eolithic Age	इयोलिथिक-युग, पाषाणकाल का उषः काल
Eonthropus	उषः मानव
Equid	अश्वसम
Erosion	आवरण-क्षय
Excavation	उत्खनन
Exploration	अनुसंधान, अन्वेषण
Fertile Crescent	उर्वर-अर्धचन्द्र
Fertility Drama	कृषि-नाटक
Flake	फ्लेक, फलक
Fontechevade Man	फोंतेशेवाद मानव
Fossil	प्रस्तरित-अवशेष
Genetic	आनुवांशिक
Geological Time	भूगर्भीय समय
Glacial Age	हिमयुग
Glacier	हिमनदी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Glazing	काचन विद्या
Granary	अन्नागार
Gravel	बजरी
Graver	रुखानी
Grimaldi Man	ग्रिमाल्डी-मानव
Group	समूह
Hand axe	मुष्टि छुरा
Harpoon	हार्पून
Heidelberg Man	हीडलबर्ग-मानव
Hoe	कुदाल
Holocene/Recent	सर्वनूतन युग
Hominid	मानव सम
Homo	मानव
Homo-sapiens/True Man	पूर्णमानव, मेधावी-मानव
Ice Age	हिमयुग
Implememts	हथियार
Industry	उद्योग
Interglacial	अन्तर्हिमयुग
Interpluvial	अन्तर्वर्षायुग
Java Man	जावा मानव
Lake Dwellings	जलगृह
Magic	जादू
Mammals	स्तनपायी प्राणी
Mammoth	मैमथ, गजराज
Mana	'मन'
Matriarchal	मातृसत्तात्मक
Megalith	वृहत्पाषाण
Menhir	मेनहिर
Mesolithic/Middle Stone Age	मध्य-पाषाणकाल
Mesozoic Age	मध्य-जीवयुग
Metazoa	बहुकोषी जीव
Microburin	लघु-रुखानी, माइक्रोबरीन
Microlith	लघुपाषाणोपकरण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Miocene	मध्य-नूतन-युग
Missing Link	लुप्त कड़ी
Monolith	मेनहिर
Mutation	तात्त्विक परिवर्तन
Natural Selection	प्राकृतिक निर्वाचन
Neanderthal	नियण्डर्थल-मानव
Neanderthaloid	नियण्डर्थलसम
Neolithic/New Stone Age	नव-पाषाणकाल
Nomad	यायावर, खानाबदोश
Oligocene	आदि नूतन-युग
Palaeolithic Age	पूर्व-पाषाणकाल
——Lower	प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल
——Middle	मध्य-पूर्व-पाषाणकाल
——Upper	परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल
Palaeozoic	प्राचीन-जीव-युग
Patriarchal	पितृसत्तात्मक
Peking Man	पेकिंग-मानव
Pithecanthropus Erectus	पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस
Pithecanthropus Pekinensis	पेकिंग-मानव
Pleistocene Period	प्लीस्टोसीन, प्राति-नूतन-युग
Pliocene	प्लीयोसीन, अति-नूतन-युग
Pluvial Age	वर्षायुग
Post Glacial Age	हिमोत्तर युग
Potter's Wheel	कुम्हार का चाक
Pottery	मृद्भाण्ड
Pre-dynastic	प्राग्वंशीय
Prehistoric	प्रागैतिहासिक
Priest	पुरोहित, पुजारी
Primary Period	प्राथमिक काल
Primate	नर-वानर परिवार
Primitive	आदिम
Proterozoic	प्रारम्भिक-जीव-युग
Proto-historic	पुरा-ऐतिहासिक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Protozoa	एककोषी जीव
Quaternary Period	चतुर्थक काल
Reed	रीड, नरकुल
Reptile	सरीसृप
Ring Method	छल्लाविधि
Rock Shelter	गुहा-आश्रय
Scraper	खुर्चन-यन्त्र
Seal	मुद्रा, मुहर
Secondary Period	द्वितीयक युग
Sediment	चूर्ण
Sedimentary Rock	स्तरीय-चट्टान
Sickle	हंसिया
Side Scraper	पार्श्व-खुर्चन-यन्त्र
Sinanthropus	चीनी-मानव
Site	स्थल
Solar Radiation	सौर्यिक विकिरण
Solar System	सौर-मण्डल
Solo Man	सोलो मानव
Somatic	दैहिक
Steinheim Man	स्टीनहीम-मानव
Stone Age	पाषाणकाल
Struggle for Existence	जीवन-संघर्ष
Suggestion Picture	संकेत-चित्र
Survival of the Fittest	योग्यतम का अनुजीवन
Swanscombe Man	स्वैनकोम्बे-मानव
Sympathetic Magic	सादृश्यमूलक जादू
Technical Skill	विज्ञान-कौशल
Tell	टीला
Tertiary Period	तृतीयक युग
Tomb	समाधि
Tool	उपकरण
Totem	टॉटेम
Tumlus	ट्मलस्
Vertebrate	पृष्ठवंशी
Wadjak Man	वादजक-मानव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पठनीय सामग्री

Burkitt, M. C., *The Old Stone Age* (1949).
Burkitt, M. C., *Prehistory* (1925).
Burkitt, M. C., *Our Early Ancestors* (1929).
Clark, J. Desmond, *The Prehistory of Southern Africa* (1959).
Clark, J. G. D., *From Savagery to Civilization* (1946).
Coon, Carlton, S., *The Story of Man* (1955).
Cole, S., *The Prehistory of East Africa* (1954).
Childe, V. G., *What Happened in History* (1957).
Childe, V. G., *Man Makes Himself* (1955).
Childe, V. G., *The Dawn of European Civilization* (1957).
Childe, V. G., *The Prehistory of European Society* (1958).
Childe, V. G., *New Light on the Most Ancient East* (1952).
Childe, V. G., *Bronze Age* (1930).
Fairservis, W. A., *The Origins of Oriental Civilization* (1959).
Frankfort, H., *The Birth of Civilization in the Near East* (1955).
Ghirshman, R., *Iran* (1954).
Hoebel, E. Adamson, *The Man in the Primitive World.*
James, E. O., *Prehistoric Religion.*
Kuhn, H., *On the Track of Prehistoric Man* (1958).
Leakey, L. S. B., *Adam's Ancestors* (1953).
Mcburney, C. B. M., *The Stone Age of Northern Africa* (1960).
Mikhail, N., *The Origin of Man* (1959).
Montagu, A., *Man : His First Million Years* (1959).
Montagu, A., *An Introduction to Physical Anthropology* (1951).
Marjorie and Quennell, *Everyday Life in Prehistoric Times* (1959).
Oakley, P. Kenneth, *Man the Tool-Maker* (1958).
Piggott, S., *Prehistoric India* (1950).
Singer, Holmyard and Hall, *A History of Technology*, Vol. I (relevant Chapters) (1956).
Wheeler, M., *Early India and Pakistan* (1959).
Wells, H. G., *The Outline of History* (1956).
Zeuner, F. E., *Dating the Past* (1958).

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अनुक्रमणिका

अ

अंक ८७,१०५.
अग्नि २६,३६,४०–४१, ५६.
अचूलियन संस्कृति ३२,३४,३५,४०.
अजीलियन संस्कृति ६४.
अजीव युग ८.
अतिनूतन युग १३.
अतेरियन संस्कृति ५१.
अन्नागार ६८,७१.
अनातोलिया ८१.
अनो ६८.
अन्तर्वर्षायुग १४.
अन्तर्हिमयुग १३,२५,३०,३१,३४.
अन्नदेव ८२.
अनयाथियन ३५.
अनुवंशीयता सिद्धान्त ५.
अफ्रीका २७,२६,२७,३६,४८,६६.
अफ्रीकी मानव, दे० ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्
अफगानिस्तान ७०,८८.
अभिलेख १०७.
अमरीका ३०,३३,६६,१००.
अम्रातियन ८८,८६.
अरब ६२.
अल उबैद ८६,६५,१०२.
अल उमरी ६८.
अलेक्जेण्ड्रिया १०७.
अल्जीरिया २७.
अल्तमीरा ५५.
अल्पाइन हिमयुग क्रम १३.
अवेस्ता ३.
अश्व १६,३६,६३.
अश्वसम पशु ६३.
असीरिया ८८,६०.
अस्तरावाद ६८.
अस्तूरियन संस्कृति ६४.

आ

आख्यानों का जन्म ८४.
आत्मनिर्भरता २१,८०,८७,६५,६७, १०३–४.
आदिनूतन युग १२.
आदिम जातियाँ २१.
आन्तरिक उपकरण दे० कोर उपकरण
आभूषण ५३.
आयरलैण्ड ६६.
ऑरिजिन ऑव स्पेसीज १६.
ऑरिन्येशियन संस्कृति ४६,५०.
आरी ३२,४०.
आर्यभट २.
ऑलिगोसीन १२.
आल्प्स् १३.
ऑसबार्न २७.
आसाम ७२.
ऑस्ट्रेलिया २०,१००.
ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस् २५,२६–२७. २८,३८
ऑस्ट्रोनोमिक्ल विधि ७.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इ

इंगलैण्ड ४,२६,८१,८५.
इटली ३६,३७,५२.
इयोन्थ्रोपस डॉसोनी ३०.
इयोलिथ २०,२४–२५,३३,६५.
इयोसीन १२.
इरिडू ८६,१०२.
इरेक १०२.
इवान्स १६.

ई

ईंटें ७६,८७,८६,६६,१०५.
ईरान ४७,४८,६७,८८,८६.

उ

उजबेकिस्तान ४३.
उत्तरपाषाणकाल, दे० नव-पाषाणकाल
'उद्योग' ३२.
उपकरण, उषःपाषाणकालीन, दे० इयोलिथ; परवर्ती-पूर्व-पाषाण-कालीन ४८–५२; पॉलिशदार २१,४६,६७,७६–७७; प्रारम्भिक पूर्व-पाषाणकालीन २३–२४, ३१–३६; लकड़ी के २४.
उभयचर ६.
उर १०२,१०६.
उर्वर-अर्धचन्द्र १०१–२.
उरुक १०२.
उषः मानव ३०.

ऊ

ऊंट १६,६४.
ऊन ७३,७६.

ऋ

ऋतु शास्त्र ५६.

ए

एकजीवकोशी प्राणी ४.
एजियन प्रदेश ८८.
एटलेन्थ्रोपस २७.
एन्थ्रपॉएड एप १६,१८, २८.
एप १७,२६.
एब्बेविलें १६.
एब्बेविलियन संस्कृति, दे० चैलियन संस्कृति
एलायनमेंट ८३.
एशिया २२,२६,२७,२८,३३,३५,४३, ४८,८६.
एशिया माइनर ६७,८८.
एस्किमो ४८.

ऐ

ऐतिहासिक युग २१,१०२,१०६.

ओ

ओल्डोवान संस्कृति ३५.

औ

औद्योगिक क्रान्ति ८४,१०७.
औद्योगिक विशिष्टीकरण ८०.
औपचारिक सहवास ८२.

क

कनाडा ३३.
कनामं २७.
कपड़ा बुनना ६७,७५–७६.
कपास ७६.
कबीला ८१,६७,६८.
करघा ७६,७७.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कला, नव-पाषाणकालीन ८१; परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन २३, मध्य-पाषाणकालीन ६३.

कांस्य, कांस्यकाल २११,८१,८७,८८,९०, ९६,९९–१०६.

काचन क्रिया ८७,१०५.

कातने की कला ७५.

कानून २१,१०४.

कॉपरनिकस २.

काफिले २१.

काफुश्रान संस्कृति ३५.

कार्बन कल्प ९.

कार्बन परीक्षण ७,६७.

कामल ३८,४३,४७,६८.

कालासागर ५०,६२.

काष्ठ कला ६७,७६.

किचेन मिडेन ६५.

कीथ, आर्थर २६,४७.

कुत्ता ६३,९३.

कुदाली ७१,८६,९२.

कून, सी० ४७.

कुम्हार ७३,७४,८९,९७.

कुर्दिस्तान ६८.

क़ुरान ३.

कुल्हाड़ी २२,३२.

कृषि कर्म २१,२२,६५,६६,६९–७८, ९१–९३,१०१.

कृषि नाटक ८२,९८.

कृषि शास्त्र ८४.

केप्सियन संस्कृति ५१,५२,६४.

केब, मिश्र का पृथिवी देव १.

केनिया २७.

केन्ट ३०.

केन्द्रीय शक्ति १०२–३.

केप्सियन सागर ६२.

कोम्ब कोपेल मानव ४८.

कोयर्निंग्स्वाल्ड २८.

कोर उपकरण ३१,३२,३३.

कोल्न लिन्डलथाल ६९,७१.

कौड़ियां ६९,८१,८९.

क्रीट २१,६९,१००.

क्रीटास ४५.

क्रीमिया ३७.

क्रोमलेच ८३.

क्रोमान्यों मानव ३८,४६,४७,४८,६२.

क्लेक्टोनियन संस्कृति ३४,३५,४०.

क्वाटर्नरी १३.

ख

खगोल विद्या ८४,१०५.

खफजा ९८.

खाई ८०.

खाद ७३,९२.

खाल ४२,५२,७३.

खुरचन यन्त्र ३२.

ग

गदा ७७.

गधा ९३.

गरजियन संस्कृति ८९,९०,९४,९५.

गुञ्ज १३.

गुफा ३६,४०.

गुफा-युग, परवर्ती ५२; प्रारम्भिक ४०

गैलिली समुद्र ४३,४७.

गोल्डश्मित ५.

ग्रवेशियन संस्कृति ४६, ६३.

ग्रामों की योजना ७९–८०.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ग्रिमाल्डी मानव ४७.
ग्रीनलैण्ड ३३,४८.

घ

घिरनी ७९.
घोड़े की काठी ९३.

च

चक्की ७१.
चतुर्थक काल १३.
चरखा ७६,७७.
चहारदीवारी ८०.
चाइल्ड, गॉर्डन ७२,८७.
चाक ७५,८९,९५.
चॉपर उपकरण ३१,३२,३५–३६.
चित्रकला की मूल समस्या ५५.
चीन २९,३३,३५,५०,६९.
चीनी मानव, दे० पेकिंग मानव
चैलियन दे० एब्वेविलियन,
चोउकोउतिएनियन संस्कृति २९,३५.

छ

छल्ला विधि ७५.
छुरा ३२.
छेनी ३२.

ज

ज़नसंख्या में वृद्धि ७७–७८,८६–८७.
जम्देतनस्र ९०, १०२.
जर्मनी ३०,३७,४७.
जर्मो ६८.
जलगृह ६६,७९.
जलबिच्छु ८.
जलयातायात ९५.
जादू-टोना ८३.
जापान ६५,१००.
जावा/जावामानव २७,२८,३५,४८,७९
जिगुरत १०३.
जिब्राल्टर ३७.
जीवतत्त्व ४.
जीवन का इतिहास ५,७.
जीवन का उद्भव ३.
जीवन-संघर्ष नियम ४.
जीवयुग, प्रारम्भिक ८; प्राचीन ८; मध्य ९; नव १०.
जीवरसायन शास्त्र ८४.
जुआ (yoke) ८६,९१.
जेलीफिश ८.
जेरिको ग्राम ६७,७९,८०.
जोहन्सबर्ग २७.
ज्योमिति १०५.
ज्योतिष ८४,१०५.

ट

टमलस् ८२.
टरनीफाइन २७.
टर्सियरी १२.
टांग्स २६.
टिन ९९.
टिलनी २८.
टेम्स ३०.
टैलेन्थ्रोपस २७.
टोटेम ८१,९७.
ट्रान्सवाल ४८.
ट्रिनिल २८.

ठठेरे ९६.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ड

डार्ट २६.
डार्विन ४,१५,१६.
डॉलमेन ८२.
डॉसन, चार्ल्स २६.
डीसेन्ट ऑव मेन १५.
डुबाय, यूजीन २७,२८.
डुसेल डोर्फ ३७.
डेनमार्क ६५.
डेन्यूबियन ६६,७१,७२.

त

तकली ७७.
तक्रुए ६८.
तम्पानियन संस्कृति ३५.
तम्बू ५२.
तस्मानिया ४३.
ताम्र / ताम्रकाल २१,८६,६८,६६.
ताबीज ५८,८३,८६,६७.
तार्देनुआजियन संस्कृति ६४.
तासा ६८.
तुर्किस्तान ६७.
तेप गावरा ६०,६४.
तैल हलफ़ ८६.
तृतीयक युग १२.

थ

थीबिज ६६.

द

दास प्रथा ६८.
दीर्घ-अन्तर्हिमयुग १३.
दैनिक जीवन, उषः पाषाणकालीन २५;
प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकालीन ३६.
द्वितीयक युग ६.

ध

धनुष बाण ५१–५२,७७.

न

नखलिस्तान ८८.
नगर-क्रान्ति २१,८७,८८,६०,६६–१०६.
नतूफियन ६८,७०.
नर-वानर परिवार १२,१६.
नरबलि ८२.
नव जीवयुग १०,१७.
नव-पाषाणकाल १४,२०,६१–६६, ८५.
८६,८७.
नहरें २१.
नारी मर्तियां ५४–५८, ८१.
नार्वे ७७,८७,६५.
नाव २१,६७,७७,८७,६५,
नियण्डर्थल मानव / संस्कृति २०,३१.
३७–४४,४६,४७.
नियण्डर्थलसम ३८,४३,४८.
न्यायालय १०४.

प

'पंचायतघर' ८१.
पतजतनियन संस्कृति ३५.
परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल २०,४५–६०.
परिवार ८०.
पशुपालन २१,६५,६६,७२–७२,६२.
पहिया / पहियेदार गाड़ी २१,८७,६४.
पक्षियों का उद्‌भव ११.
पाषाणकाल का उषःकाल २०,२३–२५.
पितृसत्तात्मक परिवार ६८.
पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस २७,२८,३०,३६;
मोइजोकरटेन्सिस २८; पेकिने-
न्सिस, दे० पेकिंग मानव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पिरेमिड ८६,६३.
पिल्टडाउन मानव २६,२६–३०, ४६.
पुजारी ५८,१०३.
पुर्तगाल ६४,६५.
पूर्णमानव / पूर्णमानव जातियां १२, १७,२६,३०–३१, ३८,३६,४३, ४५–४८.
पृथिवी, सृष्टि में स्थान २; जन्म ३;
पेकिंग / पेकिंग मानव २६,२८,२६,३३, ३६,४०.
पेई, डब्ल्यू० सी० २६.
पेरी ६६,७०.
पेलेस्टाइन ३२,४३,४७.
पेरिगोरडियन संस्कृति ४६.
प्रजीवयुग ८.
प्राइमरी युग ८.
प्राकृतिक निर्वाचन ४.
प्रागैतिहासिक अवशेष, काल निर्णय,७.
प्राचीनतम विशेषज्ञ ४३.
प्राचीन जीवयुग ८.
प्राणिशास्त्र ५६.
प्राति नूतन युग, दे० प्लीस्टोसीन युग
प्रादि नतन युग १२.
प्रारम्भिक जीवयुग ८,१६.
प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल २०,२६,३६.
प्रेस्टविक १६.
प्रोटोजोआ ४.
प्लीओसीन १३,२५.
प्लीस्टोसीन युग १३,२२०,२७,२६,३१, ४८,६२.

फ

फराओ १०३.
फलक उपकरण ३३.
फलों की खेती ८७,६२–६३, ६७.
फाकानोर १६.
फायूम ६८,७१.
फावड़ा ६६.
फ्रांस ४,३१,३२,३३,३७,४७,४८.
फ्रेंकफर्ट, हेनरी ६४.
फ्रेजर ५७,८२.
फ्लोरीन परीक्षण ७,३०.
फोंतेशेवाद मानव ३१,३३,३६४७.

ब

बगदाद १०७.
बच्चों का महत्त्व ७८.
बढ़ई ६७.
बदरी / बदरियन संस्कृति ६८,८८,८६.
बर्किट ५७.
बर्छी ३६,४०.
बर्मा ३२.
बल्कान प्रदेश ७२,८१.
बहुजीवकोशी प्राणी ४.
बांध २१,८८,१०३.
बाइबिल १,३,१५.
बूशे द पर्थ ३६.
बृहत्पाषाण ८२,८३,८४,८५..
बेल्जियम ३७.
बैबिलोनिया ८३.
बैलगाड़ियाँ २१,६४,६५.
ब्राजील ६५.
ब्रिटन ८२.
ब्रुम २६.
ब्रुश ५६.
ब्रयूक्नर १३.
ब्रोकन हिल ४८.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भ

भट्टी ७५,८९,९६.
भाला ३२,४०.
भार व नाप के पैमाने १०५.
भारत २,३२,३३,३५,५०,६२,७६,८८, १००.
भाषा १८.
भित्ति चित्र १८.
भूगर्भशास्त्रीय समय ६.

म

मंचूरिया ६५.
मकानों के प्रकार ७९,८१,८९,१०५–६.
मत्स्य कल्प ९.
मध्य जीवयुग ९.
मध्य नूतन युग १३.
मध्य-पाषाणकाल २०,६१–६५.
मध्य-पूर्व-पाषाणकाल २०,३७–४४.
मनुष्य, आदि पूर्वज १६- १७; आविर्भाव १५; प्राचीनता १६; सफलता का रहस्य १८–१९; विकास का आदि स्थल २६–३०.
मनुष्यसम प्राणी १२,१३,१७,२६–३०.
मन्दिर ५८,८९,१०३.
मलाया २०,३५.
मांसाहार २५,४१.
मातृशक्ति ५४,५८,९८१.
मातृसत्तात्मक व्यवस्था ८०,९८.
मान्टेग्यू, एशले ३९.
मानव (Homo) ३९.
मार्स्टन ३०.
मिन्डेल १३.
मिश्र १,२,२१,६२,६८,८४,१०१.
मुद्रा ८७,९७,१०५.
मुष्टि छुरा २२,३२–३३,३५.
मूस्टेरियन संस्कृति ३९–४०,५०.
मेसोपोटामिया ६५,८९.
मेहराब ८७,१०५–६.
मेक्सिको ३३.
मैग्डेलेनियन संस्कृति ४९,५१,७९.
मैग्लेमोजियन संस्कृति ६५.
मेरिम्द ६८,७१,८३.
मृतक संस्कार ४२,५८,८२,८८.
मृत्यु की समस्या ४३.
मृद्भाण्ड कला ६७,७३–७६,९५.
मेगेलिथ, दे० बृहत्पाषाण
मेटाजोआ ४.
मेडिट्रेनियन ४६,६७,८१,८८.
मेनहिर ८२.
मेण्डल, ग्रीगोर ५.
मेधावी मानव ४३.
मोइजोकर्टो २८.
मोहनजोदाड़ो १०३,१०६.
मौयर ३०.

य

यातायात ८०,९३–९५.
युद्ध ९८,१०४.
यूगोस्लाविया ३७.
यूनान ७२.
यूरोप २,१३,२६,२९,३०,३३,३९, ४७–४८.
योग्यतम का अनुजीवन ४.

र

रथ ९३,१०२.
रन्दा ४०,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रसायन शास्त्र ८४.
राजा ८१,८२,६८.
राजसमाधि ,उरकी १०६.
राज्य ८४,१०४.
रॉयल सोसायटी १६.
रिनाख ५७.
रिस्स १३.
रूस ४३,५२.
रोम / रोमन युग २२,१०७.
रोडेशिया / रोडेशियन मानव २६,४८.

ल

लघुपाषाणोपकरण ५२,६३–६५.
लागाश १०६.
लाल सागर ६६.
लिपि २१,८४,८७,१०२.
लिपिक २१.
लुप्तकड़ी १५–१७,२७,३०.
लेवालुआजियन संस्कृति ३५,४०.
लेमार्क ४.
लौह काल २२,७५,१००.
ल्येल ६६.

व

वनस्पति शास्त्र ५६.
वरनो, प्रोफेसर ४७.
वर्णमाला १०७.
वर्म १३.
वर्षायुग १४.
वस्त्र ५२,६६,७३.
वाक् शक्ति १८.
वार्तक्रान्स २७.
वादजक मानव ४८.
वालेस, एल्फ्रेड ४,
विकासवाद ४,१५
विचार शक्ति १८.
विदेशी व्यापार १०३-४.
विधि संहिता १०४.
विशिष्ट वर्ग २१,६५,६५६.
विज्ञान ५६,८३,८४.
वीजमान ऑगस्ट ५.
वीनस ५४,६०.
वूली ६४.
वेल्स ४६.
वैबिलोव ७०.
व्यक्तिगत सम्पत्ति ६७–६८.
व्रीज, ह्यूगो द ५.

श

शराब ८७,६७.
शांसलाद मानव ४८.
शिकार ३६,४१–२,५२,५८,६३,७८.
शिश्न मूर्तियां ८१.
शुल उपशाखा ४३.
शेतलपेरोनियन संस्कृति ४६.
शेलफिश ६५.
श्रम-विभाजन ५३,८०.

स

संकरोत्पत्ति ७१.
संकेत-चित्र २३,५५,६२.
सभ्यता का जन्म ६६–१०६.
सरीसृप कल्प १०.
सर्वनूतन युग १४.
ससेक्स २६.
साइबेरिया ५०–५२.
सादृश्यमूलक जादू ५८,८१.
सामाजिक संगठन ४२,६२,–८१,६८.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सारगोन प्रथम १०३.
सार्डीनिया ६५.
सिंचाई व्यवस्था ७१,८७.
सिन्धु प्रदेश / सभ्यता २१,९७,१००,
१०१,१०२,१०४.
सिम्पसन ५.
सियालक ६८,८९–९०,९७.
सींग के उपकरण ४६.
सीढ़ी ६६,६७–७७.
सीरिया ३२,६७,८८.
सुश्रा ४०.
सुई ५१.
सुमात्रा ७९.
सुमेर ८९,९०,९३,९७,१००–२.
सृष्टि २–३.
सेन्ट अचूल ३२.
सैक, शूटन ३०.
सैनिक १०४.
सोअन ३५.
सोम, नदी १६.
सोलो मानव ४८.
सौर पंचाङ्ग ८७,१०५.
सौर मण्डल २.
सौर्यिक विकिरण ७.
सौल्युट्रियन संस्कृति ४६,५०–५१,६३.
स्कैन्डिनेविया ८२.
स्टीनहीम मानव ३१,३१,३३,३९,४७.
स्टूटगार्ड ३१.
स्टोनहेञ्ज ८५.
स्थायी जीवन ७८–७९, ९७.
स्पेन ३२,३६,३७,५५, ५६.
स्मिथ, इलियट २८,४७.
स्लेज गाड़ी ९३.
स्वीट्जरलैण्ड ४७,६६.
स्वीडन ६५.
स्वैनकोम्बे मानव ३०,३३,३४,३९,४७.

ह

हंसिया ६८,७१,७७.
हक्सने ३२.
हड़प्पा १०४.
हथौड़ा ३२.
हथियार नैसर्गिक ४०; मानव निर्मित ४०.
हल ७१,८६,८७,९१.
हलफ / हलफियन ३२,८९,१०२.
हाथ १९,२३.
हाथी ३६.
हाथीदांत ४६.
हार्पून ५१,५२,६४.
हिमयुग / हिमयुग क्रम ७,१३,३०,३१.
३३,३४,३५,३९,४०,४१,५२,६२.
हिमोत्तर युग १३.
हिसाब-किताब २१.
हूतू गुफा ४७,४८.
होलोसीन १४,२१,६२,६६,६७,१०१.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लेखक की दूसरी कृति

विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ

अनेक चित्रों तथा नवीनतम सामग्रियों से पूर्ण।

मूल्य १२·५०

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal